लाहौर
पञ्जाब एकानोमीकल यन्त्रालय में
प्रिण्टर् लाला लालमणि जैनी
के अधिकार से छपा।

प्रस्तावना

इस संसार में प्राणी मात्र को धर्म्म का ही शरण है, जन्म से मरण पर्य्यंत धर्म्मही प्राणी मात्र का सहायक है, इस कलियुग में प्रायः बहुत सी कक्षा धर्म की होगई हैं और सब अपने २ धर्म की स्तुति करते हैं, आजकल प्रायः जैनी भाइयोंमें से भी बहुत से अल्पज्ञता के कारण अपने सच्चे केवली भाषित दयामय धर्म्म को त्यागकर दूसरे सावद्य आचार्य्यों से कथित (हिंसा बिना धर्म नहीं होता अर्थात् हिंसा में धर्म है) ऐसे मतों को अङ्गीकार कर लेते हैं जिस से इस देश में बहुतसे श्रावकजन गणधर कृत सूत्र सिद्धान्त

के न जानने वा न सुनने के कारण दूसरों के कल्पित ग्रन्थों के हेतु कुहेतु सुन कर भ्रमरूपी फन्दे में फस जाते हैं, इन क्लेशों के निवारण करने के लिये सत्यार्थ चन्द्रोदय जैन अर्थात् मिथ्यात्वतिमिर नाशक नाम ग्रन्थ बनाने की मुझे आवश्यकता हुई। सुज्ञ जनोंको विदितहो कि इस ग्रन्थ में जो सनातन जैनमतमें दो शाखें गई हैं अर्थात् १ श्वेताम्बराम्नाय और दूसरे दिगम्बराम्नाय, श्वेताम्बराम्नायमें भी २ दो भेद हो गये हैं १ सनातन चेतन पूजक (आत्मा न्यासी) दया धर्मी श्वेत वस्त्र, रजोहरण मुख वस्त्रिका वालेसाधु, जो सर्वदा सत्याऽसत्य की परीक्षा कर असत्य का त्याग और सत्यका ग्रहण करने वालेहैं जिनको(ढूंढिये) भी कहते हैं २य, जड पूजक (मूर्तिपूजक)जिसमें श्वेताम्ब

राम्नाय से विरुद्ध थोड़े काल से पीताम्बर धारियों की एक और शाखा निकली है क्योंकि श्वेताम्बरी नाम श्वेतवस्त्र वाले का होता है श्वेतका अर्थ सुफैद और अम्बरका अर्थ वस्त्र है सो शब्दार्थ से भी यही सिद्ध होता है कि श्वेताम्बरी वही होसकता है जो श्वेत वस्त्र वाला साधुहो, इसलिये यह पीतवस्त्रधारीसाधु अपने आपको जैन शास्त्रसे विरुद्ध श्वेताम्बरी कहते हैं,यहप्राय.मूर्ति पूजाका विशेष आधार रखते हैं, इसलियेइसपुस्तकमेंनिक्षेपोंका अर्थसहित और युक्ति प्रमाण द्वारा स्पष्ट रीतिसे मूर्ति पूजा का खण्डन किया गया है और जो मूर्ति पूजक सूत्रों में से 'चेइय' शब्द को ग्रहण करके मूर्ति पूजने का भ्रम स्वल्प बुद्धिजनों के हृदयमें डालते हैं। इसभ्रम काभी संक्षेप रीतिसे सूत्रोंके प्रमाण

द्वारा खण्डन किया गया है, इस ग्रन्थ के आद्योपाङ्ग बांचने से स्व सम्प्रदायी तथापर सम्प्रदायी चार तीर्थों में से कई एक सुज्ञजन नर वा नारियोंका शंकारूपी रोग दूर होगा और बहुतों की कुतर्कोंका उत्तर देना सुगम हो जायगा इत्यर्थ ॥

नं० विषय पृष्ठ

उत्तर—ज्ञान से ज्ञान होता है इस को युक्तियों से सिद्ध किया है। ५१

८ प्रश्न–किसी बालक ने लाठी को घोड़ामान रक्खा है उसको तुम घोड़ा कहो तो क्या मिथ्यावादहै।
उत्तर—उसघोडे को घोड़ाकहना दोष नही किन्तु उसको घोड़ा समझके चाराघासदेना अज्ञानका कारणहैसाचेके खिलौने इत्यादि दृष्टान्त और भाव से देव माना जाता है इस का खण्डन। ५६

९ प्रश्न–अज्ञानियों के वास्ते मन्दिर मूर्ति पूजा चाहिये गुड्डियोंके खेलवत इस का खण्डन ६०

१० प्र०–नमो अरिहन्तानं यह मुक्त हुए मे किस प्रकार सघटित होता है इसका उत्तर लिखा गया है ६४

११ प्र०–जो मूर्ति को न माने तो ध्यान किस का धरे।
उत्तर—सूत्र में तत्व विचार का ध्यान कहा है न कि ईंट पत्थर का। ६६

१२ प्र०–आप ने युक्तियों से तो मूर्ति पूजाका खण्डन भली

नं०	विषय	पृष्ठ
	द्वारा समवसरणरूप जाना भी जाय तो क्या उस को नमस्कार वन्दना भी करना चाहिये ? नहीं इत्यादि दृष्टान्त सहित वचन ।	११
४	प्रश्न-जो पूजनीय है उस की मूर्ति भी पूजनीय है इस का मित्र और मित्र की मूर्ति के दृष्टान्त द्वारा खण्डन ।	३१
५	प्रश्न-तुम मूर्ति क्यों नहीं मानते हो उसका उत्तर मूर्ति को तो हम मूर्ति मानते हैं परन्तु मूर्ति को पूजना नहीं मानते हैं । साहूकार की बहू देव द्वार गई इस दृष्टान्तके सहित ।	३३
६	प्रश्न-तुम भगवन्मूर्ति नहीं मानते हो तो नाम क्यों लेते हो इसका उत्तर सत्य शास्त्र और दृष्टान्त सहित सिद्ध किया है ।	३६
७	प्रश्न-पुस्तक जो अक्षर रूप मूर्तियां हैं भी तो ज्ञान होता है ।	

नं०	विषय	पृष्ठ
	उत्तर—ज्ञान से ज्ञान होता है इस को युक्तियों से सिद्ध किया है।	५१
८	प्रश्न—किसी बालक ने लाठी को घोड़ामान रक्खा है उसको तुम घोड़ा कहो तो क्या मिथ्यावाद है। उत्तर—उसघोडे को घोड़ाकहना दोष नही किन्तु उसको घोड़ा समझके चाराघासदेना अज्ञानका कारणहैसाचेके खिलौने इत्यादि दृष्टान्त और भाव से देव माना जाता है इस का खण्डन।	५६
९	प्रश्न—अज्ञानियों के वास्ते मन्दिर मूर्ति पूजा चाहिये गुड्डियों के खेलवत इस का खण्डन	६०
१०	प्र०—नमो अरिहन्तानं यह मुक्त हुए मे किस प्रकार संघटित होता है इसका उत्तर लिखा गया है	६४
११	प्र०—जो मूर्ति को न माने तो ध्यान किस का धरे। उत्तर—सूत्र में तत्व विचार का ध्यान कहा है न कि ईंट पत्थर का।	६६
१२	प्र०—आप ने युक्तियों से तो मूर्ति पूजाका खण्डन अच्छी	

नं०	विषय	पृष्ठ
	मांति किया परन्तु कई एक जगह सूत्रों में मूर्ति पूजा सिद्ध होती है सो किस तरह ? उत्तर—चौदा है प्रामाणिक सूत्रोंके अनुसार उस के पाठ पर्व मे सिद्ध नहीं होती है ।	१७
१३	प्र०—राय प्रश्नी सूत्र में सुरियाभ देव ने मूर्ति पूजी है ? उत्तर—देवलोक में अकृत्रिम (शाश्वती) मूर्तियें होती हैं इत्यादि प्रमाणोंसे मूर्तिका पूजन मुक्ति का मार्ग नहीं है यह सिद्ध किया है और ज्ञान दीपिका पुस्तक में जो मूर्ति खण्डन भी छठ है गया लिखा है उस का तोड़ दिया है ।	१८
१४	प्र—उवाई सूत्र के आदि में (बहवे अरिहन्त चेईये) ऐसा लिखा है और अम्बड जीने भी मूर्तिपूजा की है ऐसा लिखा है । उत्तर—केवल अज्ञानता से ही ऐसा कहना होता है सूत्र के पाठार्थ से यह भाव नहीं निकलता पाठार्थ भी लिख दिया गया है ।	२०

नं० विषय पृष्ठ

१५ प्र०—उपासक दशाङ्ग में आनन्दादि श्रावकों ने मूर्ति
पूजी है।
उत्तर—यह सब कहना मिथ्या है सूत्र पाठ अर्थ
से यह सिद्ध नहीं होता, ऐसा सिद्ध किया है। ८७

१६ प्र०—ज्ञाता सूत्र मे द्रौपदी ने तीर्थंकर देवकी मूर्ति
पूजी है ?
उत्तर—यह भी मिथ्या है सूत्रानुसार चार कारणों
से उक्त कथनको मिथ्या सिद्ध किया है। ९०

१७ प्र०—भगवती जी मे जघाचरण मुनियों ने मूर्ति
पूजी है।
उत्तर—यहभी कहना मिथ्या है क्योंकि इन्हों ने
मूर्ति नहीं पूजी यह सूत्र के प्रमाण से सिद्ध
किया है। १०१

१८ प्र०—भगवती जी में चमर इन्द्र ने मूर्ति का शरण
लिया लिखा है ?
उत्तर—भगवती में तो कहीं मूर्ति का शरण लिया
नही लिखा है, तुम्हारा कहना भूल है यह

न०　　　　विषय　　　　पृष्ठ

अच्छी प्रकारसे सिद्ध किया है और (द्रव्यचैत्य)
इस का अर्थ भी दिखलाया है। ११५

१९ प्र०—सत्यार्थ प्रश्नोत्तर रूपी भाषा पुस्तकमें पृष्ठ
२४२ पंक्ति ४ ५ में लिखा है कि किसी कोष
में भी जिन मन्दिर १ जिन प्रतिमा २ चौतरे
बन्ध वृक्ष ३ इन तीनों के सिवाय और किसी
वस्तु का नाम चैत्य नहीं है।
उत्तर—यह लेख मिथ्या है क्योंकि चैत्य शब्द
के ज्ञानादि ११ अर्थ और भी बहुत से अर्थ
सिद्ध किये गये हैं। ११६

प्र०—चैत्य शब्द का अर्थ तो आपने बहुत ठीक कहा
किन्तु मूर्ति पूजन में कुछ दोष है?

उत्तर—सूत्र शास्त्र में २ दोष सिद्ध किये हैं आरम्भ
और मिथ्यात्व .. ११८

२१ प्र०—महा निशीथ सूत्र में तो मन्दिर बनवाने वाले
की गति बारहवें देवलोक की कही है।

नं० विषय पृष्ठ

उत्तर—यह लेख भी तुम्हारे पक्षके हठ को सिद्ध करता है क्योंकि निशीथ सूत्रमें तो मूर्तिपूजन का खण्डन किया है इस विषय का पाठ और अर्थ भी लिख दिया है ॥ १२०

२२ प्र०—वलिकम्मा इसशब्दसे क्या मूर्तिपूजा सिद्धनहीं होती है ?
उत्तर—सूत्रों में वलिकम्मा का अर्थ वलिकर्म ह वल वृद्धि करने में स्नान विधि
क्या सूत्रकार ऐसे भ्रम जनक संदिग्ध पदोंसे मूर्ति पूजा कहते ? नहीं २ अवश्य सविस्तर लिख दिखलाते। १२८

२३ प्र०—ग्रन्थोंमें तो उक्त पूजादि सब विस्तार लिखे हैं
उत्तर—हम ग्रन्थों के गपौडे, नहीं मानते हैं।
प्र०—इससे क्या प्रमाण है कि ३२सूत्र मानने और निर्युक्ति आदि न मानने
उत्तर—भलीप्रकार से सूत्र शाख के प्रमाण से न मानना सिद्ध करके ग्रन्थों के गपौडे और

नं॰	विषय	पृष्ठ
	मन्दिर की बाबत सूत्रों का खास इत्यादि पूर्वोक्त सविस्तर समाप्त किया है।	१२९
२४	प्र॰—क्या जैन सूत्रोंमें मूर्तिपूजा मान्य भी है। उत्तर—पर्वोक्त सूत्रों में वस प्रवृत्ति में तो मूर्ति पूजा का विचार ही नहीं है परन्तु तुम्हारे माने हुए ग्रन्थों से ही मूर्ति पूजा का निषेध है सब यह है,यथा प्रथम व्यवहार सव की चक्ति का भद्रबाहु स्वामी कृत सोलह स्वप्नाधिकार २४ महानिशीथका तीसरा अध्ययन १ वजाह चुलिका सव ४ जिन वल्लभ सूरी के शिष्य जिनदत्त सूरी कृत सन्देह दोलावली प्र करण म से पाठ भर्थ सहित लिख दिखलाया है। ..	१३१
२५	प्र —कई एक कहते है कि जैनमत में १२ वर्षों बाद पीछे मूर्ति पूजा चली है कई एक कहते है कि महावीर स्वा मी के समय में भी थी और कई एक कहते हैं कि पीछे से ही चली आती है इस में म कौनसा ठीक है ?	

नं० विषय पृष्ठ

उत्तर—शास्त्र प्रमाणसे तो बारहवर्षी काल पीछे ही सिद्ध होती है ऐसा प्रमाण दिया है। १५१

२६ प्र०—सम्यक्त्व शल्योद्धार आत्माराम कृत गप्पदीपिका समीर बल्लभ संवेगी कृत आदि ग्रन्थ और जो उन मे प्रश्नों के उत्तर दिये हैं सो कैसे हैं ?

उत्तर—तुम ही देख लो हाथ कंगन को आरसी क्या है ढूढियों को नर्क पड़ने वाले चमार ढेढ मुसल्मान शब्दोंसे लिखा है उसके उदाहरण १५४

२७ प्र०—हमारी समझमें ऐसा आता है कि जो वेदमंत्रों को मानने वाले हैं वह पुराणों के गपोडे नहीं मानते हैं और जो पुराणों के मानने वाले हैं वह पुराणों के सब गपोडे मानते हैं वैसे ही जो सनातन जैनी ढूंढिये हैं वह गणधर कृत ३२ सूत्रों को मानते हैं ग्रन्थों के गपोड़ों को नही मानते हैं,पुजेरे मूर्ति पूजक ग्रन्थों के गपोडे मानते हैं क्यों जो ऐसे ही है ?

नं० विषय पृष्ठ

उत्तर—घोर बधा। ११६

२८ प्र०—यह जो पायाबोपास्य आत्मापिये अपने ग्रन्थों में नहीं लिखते हैं कि ढूंढक मत कौनसे से निकला है किसको ॥ जो वर्ष हुए हैं नहीं लिखते हैं कब को से निकला है किसको अनुमान कहाते जो वर्ष हुये हैं यह सत्य है कि गप्प है ?

उत्तर—गप्प है ढूंढक मत तो सनातन है ओ संवेग मत पीताम्बर वाला ग्रन्थ चलाए सौ वर्ष से निकला है यह ग्रन्थों के प्रमाण से सिद्ध किया है। ११०

२९ प्र०—क्यों जी जैन सूत्रों में जैनसाधुओं को वस्त्रों का रखना मना है।

उत्तर—हां मना है इस में प्रमाण भी दिये हैं। ११४

३० प्र०—एक बात से तो हमको भी निश्चय हुआ है कि सम्यक्त्व शल्योद्धार आदि ठग ग्रन्थोंके बनाने वाले मिथ्यावादी हैं क्योंकि सम्यक्त्वशल्योद्धार

नं० | विषय | पृष्ठ

देशी भाषा सम्वत् १९६०के छपे की पृष्ट ४ में लिखते हैं कि ढूंढिये चर्चा में सदा पराजय होते हैं परन्तु पंजाब देश मे तो राजा हीरा-सिंह नाभा पति की सभामें पुजेरों की पराजय हुई इस के प्रमाण में गुरुमुखी का इश्तिहार है।

उत्तर—तुम ही देख लो १६६

२१ प्र०—यह जो पूर्वोक्त निन्दा रूप झूठ और गालियें सहित पुस्तक और अखबार बनाते हैं और छपाते हैं उन्हें पाप तो अवश्य लगता होगा।

उत्तर—हां लगताहै इसका समाधान और प्रार्थना १७२

पञ्चपरमेष्टिने नमः।

श्रीअनुयोगद्वार सूत्रमें आदि ही में वस्तुके स्वरूपके समझनेके लिएवस्तुके सामान्य प्रकार सेचार निक्षेपे निक्षेपने(करने)कहे हैं यथा नाम निक्षेप १ स्थापना।निक्षेप २ द्रव्यनिक्षेप ३ भाव निक्षेप ४ अस्यार्थः–नामनिक्षेप सो वस्तुका आकार और गुण रहित नाम सो नामनिक्षेप १ स्थापना निक्षेप सो वस्तुका आकार और नाम सहित गुण रहित सो स्थापना निक्षेप २ द्रव्य निक्षेप सो वस्तुका वर्तमान गुण रहित अतीत अथवा अनागत गुण सहित और आकार नाम भी सहित सो द्रव्य निक्षेप ३ भाव निक्षेप सो वस्तुका नाम आकार और वर्तमान गुणसहित सो भाव निक्षेप ४।

अथ चारों निक्षेपोंका स्वरूप-मूल सूत्र और दृष्टान्त सहित लिखते हैं।

यथासूत्रम्

सेकिंत आवस्सय आवस्सय चउविह पन्नत्तं तंजहा नामावस्सयं १ ठवणावस्सयं २ दव्वा वस्सयं ३ भावावस्सयं ४ सेकिंतं नामावस्सयं नामावस्सयं जस्सणं जीवस्सवा अजीवस्सवा ?ाणवा अजीवाणवा तदुभयस्सवा तदुभया ण?? आवस्सएति नाम कज्जइसेत्त नामाव स्सयं १ अस्यार्थ ।

प्रश्न—आवश्यक किस को कहिये उत्तर अवश्य करने योग्य यथा आवश्यक नाम सूत्र जसको चार विधिसे समझनाचाहिये । तद्यथा

नाम आवश्यक १ स्थापना आवश्यक २ द्रव्य आवश्यक ३ भाव आवश्यक४ प्रश्न नामआवश्यक क्या । उत्तर–जिस जीव का अर्थात् मनुष्यका पशु पक्षी आदिकका तथा अजीव का अर्थात् किसी मकान काष्ठ पाषाणादिक जिन जीवोंका जिन अजीवों का उन्हे दोनोंका नाम आवश्यक रखदिया सो नामआवश्यक १

सेकिंतं ठवणावस्सयं २ जण्णं [1]कठकम्मेवा [2]चित्तकम्मेवा [3]पोथकम्मेवा [4]लेपकम्मेवा [5]गंठिम्मे-वा [6]वेढिम्मेवा [7]पुरीम्मेवा [8]संघाइमेवा [9]अरकेवा [10]वराडएवा एगोवा अणेगोवा [11]सज्झाव ठवणा [12]एवा असज्झाव ठवणा एवा आवस्स एति ठवणा कज्जइ सेतं ठवणा वस्सयं ॥ २॥ अस्यार्थः

प्रश्न–स्थापना आवश्यक क्या। उत्तर–काष्ठ[१] पे लिखा चित्रोंमें[२] लिखा पोथी पे लिखा[३] अंगुलीसे[४] लिखा ग्रन्थलिया[५] लपेटलिया[६] पूरलिया[७] वेरीकरली[८] कारखेंचली[९] कोठीरखली[१०] आवश्य[११] करनेवाले का रूप अर्थात् हाथ जोड़े हुये ध्यान लगाया हुआ ऐसा रूप उक्त भांति लिखा है अथवा अन्यथा[१२] प्रकार स्थापन कर लिया कि -- मेरा आवश्यकहै सो स्थापना आवश्यक २

मू० नामठवणाणकोवइविसेसोनामआवकहिय ठवणाइतरिया वा होज्जाआवकहियावाहोज्जा

अर्थ–

प्रश्न–नाम और स्थापनामें क्या भेद है॥ उत्तर–नाम जावजीव तक रहता है और स्था-

पना थोडे काल तक रहती, है, वा जाव जीव कत भी ॥

सेकिंतं दव्वावस्सयं २ दुविहा पणत्ता, तंजहा, आगमोय,नो आगमोय २ सेकिंतं, आगमउ, दव्वावस्सय२ जस्सणं आवस्सयति पयंसिरिक यं जावनो अणुप्पेहाए कम्हा अणुवउगो दव्व मिति कट्टु ॥

अस्यार्थ· ॥

प्रश्न—द्रव्य आवश्यक क्या । उत्तर—द्रव्य आवश्यकके २ भेद यथा षष्ट अध्ययन आवश्यक सूत्र १ आवश्यक के पढने वालाआदि२ प्रश्न—आगम द्रव्य आवश्यक क्या । उत्तर—आवश्यक सूत्रके पदादिकका यथाविधि सीखना पढ़ना परंतु विना उपयोग क्योंकि विना उपयोग द्रव्यही है। इति।

इस द्रव्य आवश्यकके ऊपर ७ नय उतारीं हैं जिसमें तीन सत्य नय कहीं हैं यथा सूत्र। तिण्ह सद्दनयाणं जाणए अणुव उत्ते अवत्यु।

अर्थ—तीन सत्य नय अर्थात् सात नय, यथा श्लोक

नैगम संग्रहश्चैव व्यवहार ऋजुसूत्रको।
शब्द समभिरूढश्च एवं भूतिनयोऽमी। १

अर्थ—१ नैगम नय २ संग्रह नय ३ व्यवहार नय ४ ऋजु सूत्रनय ५ शब्दनय ६ समभिरूढ नय ७ एव भूत नय इन सात नयोंमें से पहिली ४ नय द्रव्य अर्थको प्रमाण करती हैं और पिछली ३ सत्य नय यथार्थ अर्थ को (वस्तुत्वको) प्रमाण करती हैं अर्थात् वस्तु के गुण बिना वस्तुका अवस्तु प्रकट करती हैं॥

नो आगम द्रव्य आवश्यकके भेदोंमें जाणग शरीर भविय शरीर कहे हैं। ३।

भाव आवश्यकमें उपयोग सहित आवश्यक का करना कहा है। ४

इन उक्त निक्षेपोंका सूत्रमें सविस्तार कथन है॥

अव इस ही पूर्वोक्त अर्थको दृष्टान्त सहित लिखते हैं।

१ नाम निक्षेप यथा किसी गूजर ने अपने पुत्रका नाम इन्द्र रख लिया तो वह नाम इन्द्र है उसमें इन्द्रका नामही निक्षेप करा है अर्थात् इन्द्रका नाम उसमें रख दिया है परंतु वह इंद्र नहीं है इन्द्र तो वही है जो सुधर्मा सभामें ३२ लाख विमानोंका पति सिंहासन स्थित है उस में गुण निष्पन्न भाव सहित नाम इन्द्रपनघटे

है और उसहीमें पर्याय अर्थ भी घटे है यथा इन्द्रपुरन्दर, वज्रधर सहस्रानन, पाकशासन परंतु उस गूजरके बेटे ग्वालिये में नहीं घटे अर्थ शून्य होनेसे वह तो मोहगयेली माताने इन्द्र नाम कल्पना करली है तथा किसीने, तोते का तथा कुत्तेका नाम ऐसे जीवका नाम इन्द्र रख लिया तथा अजीव काष्ठ स्थम्भादिकका नाम इन्द्र रख लिया बस यह नामनिक्षेप गुण और आकारसे रहित नाम होता है कार्य साधक नहीं होता ॥

२ स्थापना निक्षेप यथा काष्ठ पीतल पाषाणादिकी इन्द्रकी मूर्ति बनाके स्थापना करली कि यह मेरा इन्द्र है फिर उसको सबे पूजे उस से धन पुत्र आदिक मांगे मेला महोत्सव करें परतु यह जब कुछ जाने नहीं ताते शून्य है

अज्ञानता के कारण उसे इन्द्र मान लेते हैं पर न्तु वह इन्द्र नहीं अर्थात् कार्य साधक नहीं २

तातें यह दोनों निक्षेपे अवस्तु हैं कल्पना रूप हैं क्योंकि इनमेंवस्तुका न द्रव्य है न भाव है और इन दोनों नाम और स्थापना निक्षेपों में इतना ही विशेष है कि नाम निक्षेप तो यावत् कालतक रहता है और स्थापनायावत्काल तक भी रहे अथवा इतरिये (थोडे) काल तक रहे क्योंकि मूर्ति फूट जाय टूट जाय अथवा उसको किसी और की थापना मान ले कि यह मेराइन्द्र नहीं यहतो मेरा रामचन्द्र है वा गोपी चन्द्र है, वा और देव है इन दोनों निक्षेपों को सातनयोंमेंसे ३ सत्यनयवालों ने अवस्तु माना है क्योंकि अनुयोगद्वार सूत्रमें द्रव्य और भाव निक्षेपों पर तो सात२ नय उतारीहैं परन्तु नाम

और थापना पे नहीं उतारी है इत्यर्थः ।

३ द्रव्य निक्षेप, द्रव्य इन्द्र जिससे इन्द्र बन सके परन्तु सूत्रमें द्रव्य दो प्रकारका कहा है एक तो अतीत इन्द्रका द्रव्य अर्थात् जाणग शरीर दूसरा अनागत इन्द्र का द्रव्य अर्थात् भविय शरीर सो अनागत द्रव्य इन्द्र जो उत्पात शय्यामें इन्द्र होनेके पुण्य बांधके देवता पैदा हुआ। और जब तक उसे इन्द्र पद नहीं मिला तबतक वह भविय शरीर द्रव्य इन्द्र है ताकि वह वर्तमान कालमें इन्द्रपनका कार्य साधक नहीं परन्तु अनागत काल (आगेको) इन्द्रपनका कार्य साधक होगा ॥

और जो अतीत द्रव्य इन्द्र सो इन्द्रका काल करे पीछे मृत शरीर जबतक पड़ा रहे तब तक वह जाणग शरीर द्रव्य इन्द्र है क्योंकि वह

अतीतकालमें इन्द्रपनका कार्य साधक था परन्तु वर्तमान में कार्य साधक नहीं यथा इदं घृतकुम्भम् अर्थात् कुम्भमेंसे घृत तो निकाल लिया फिर भी उसे घृत कुम्भही कहते हैं परन्तु उससे घी की प्राप्ति नहीं। इत्यर्थः ३

४ भाव निक्षेप, जो पूर्वोक्त इन्द्र पदवी सहित वर्तमानकालमें इन्द्रपनके सकल कार्यका साधक इत्यादिक॥ ४

अथ पदार्थका नाम १ और नाम निक्षेप २ स्थापना ३ और स्थापना निक्षेप ४ द्रव्य ५ और द्रव्य निक्षेप ६ भाव ७ और भाव निक्षेप ८ इन का न्यारा २ स्वरूप दृष्टान्त सहित लिखते हैं॥

(१) नाम, यथा एक, द्रव्य, मिशरी नाम से है अर्थात् वह जो मिशरी नाम, है सो सार्थक

है क्योंकि यह नाम वस्तुत्व में संमिलित है अर्थात् वस्तुके गुणसे मेळ रखता है यथा कोई पुरुष किसी पुरुषको कहे कि मिशरी लाओ तो वह मिशरी ही लावेगा अपितु ईंट पत्थर नहीं लावेगा इत्यर्थ ॥

(१) नाम निक्षेप, यथा किसीने कन्या का नाम मिशरी रख दिया सो नाम निक्षेप है। क्योंकि वह मिशरीवाळा काम नहीं दे सक्ती है अर्थात् मिशरीकी तरह भक्षणकरनेमें अथवा ...न करके पीनेमें नहीं आती है ताते नाम निक्षेप निरर्थक है।

२ स्थापना, यथा मिशरीके कूजेका आकार जिसको देखके पहिचानाजाय कि यह क्या है मिशरीका कूजा सो स्थापना मिशरी पूर्वोक्त सार्थक है ॥

(२) स्थापना निक्षेप यथा किसीने मिट्टीका तथा कागजका मिशरीके कूजेका आकार बना लिया सो स्थापना निक्षेप है क्योंकि वह मिट्टीका कूजा पूर्वोक्त मिशरीवाली आशा पूण नहीं करसका है ताते स्थापना निक्षेपनिरर्थकहै

(३) द्रव्य, यथा मिशरीका द्रव्य खांड आदिक जिससे मिशरी बने सो द्रव्य मिशरी सार्थक है ॥

(३) द्रव्य निक्षेप यथा मिशरी ढालने के मिट्टीके कूजे जिनको चासनी भरने से पहिले और मिशरी निकालनेकेपीछेभी मिशरी के कूजे कहते हैं सो द्रव्य निक्षेप यथा पूर्वोक्त इदंमधु कुम्भं इति वचनात् परन्तु यह द्रव्य निक्षेप वर्तमानमें मिशरीकादातानहीं ताते निरर्थक है

(४) भाव, यथा मिशरी का मीठापन तथा

शीत स्निग्ध (शरदतर) स्वभाव (तासीर) सो भाव कार्य साधक है ॥

(४) भाव निक्षेप, यथा पूर्वोक्त मिट्टीके कूजे में मिशरी भरी हुई सो भाव निक्षेप, यह भी कार्य साधक है,अब इसी तरह तीर्थंकर देवजी के नामादि चार और चारनिक्षेपों का स्वरूप लिखते हैं ॥

(१) नाम, यथा नाभिराजा कुलचन्दनन्दन मरुदेवीराणी के अंगजात क्षत्री कुल आधार सत्यवादि दृढ धर्मी इत्यादि सद्गुण सहित ऋषभदेव सो नाम ऋषभदेव कार्य साधक है क्योंकि यह नाम पूर्वोक्त गुणोंसे पैदा होता है यथा सूत्र गुण निप्पन्नं नामधेयं करेइ(कुर्वति) तथाव्युत्पत्तिसे जो नाम होताहै सो गुणसहित

होता है इस नामका लेना सो गुणों के हि स-
मान है इसके उदाहरण आगे लिखेंगे॥

(१) नाम निक्षेप यथा किसी सामान्य पुरुष का नाम तथा पूर्वोक्त जीव पशु पक्षी आदिक का तथा अजीव स्थम्भादिका नाम ऋषभदेव रख दिया सो नामनिक्षेप है यह नाम निक्षेप ऋषभदेवजीवाले गुण और रूप करके रहित है ताते निरर्थक है॥

(२) स्थापना, यथा ऋषभदेवजीका औदारिक शरीर स्वर्णवर्ण सम चौरस संस्थान वृषभ लक्षणादि१००८लक्षण सहित पद्मासन वैराग्य मुद्रा जिससे पहिचाने जायें कि यह ऋषभ देव भगवान् हैं सो स्थापना ऋषभदेव कार्य साधक है॥

(२) स्थापना निक्षेप यथा पाषाणादि का

विम्ब ऋषभदेवजीके पद्मासनादिके आकारसे स्थापन कर लिया तथा कागज आदिक पर चित्रोंमें लिख लिया सो स्थापना निक्षेप यह ऋषभदेवजीवाले गुण करके रहित जड़ पदार्थ है तासे निरर्थक है ॥

(३) द्रव्य, यथा भाव गुण सहित पूर्वोक्त शरीर अर्थात् संयम आदि केवल ज्ञान पर्यन्त गुण सहित शरीर सो द्रव्य ऋषभदेव कार्य साधक है ॥

(३) द्रव्य निक्षेप यथा पूर्वोक्तजाणग शरीर भविय शरीर अर्थात् अतीत अनागत काल में भाव गुण सहित वर्तमानकालमें भावगुणरहित शरीर अर्थात् ऋषभदेवजीके निर्वाण हुए पीछे यावत् काल शरीरको दाह नहीं किया तावत् काल जो मृतक शरीररहा था सो द्रव्यनिक्षेप

है परन्तु वह शरीर ऋषभदेवजीवाले गुणकरके रहित कार्य साधक नहीं ताते निरर्थक है ॥

यथा :- दोहा

जिनपद नही शरीर में, जिनपद चेतन मांह
जिन वर्णनकछु और है,यह जिनवर्णननांह॥१॥

(४) भाव, यथा ऋषभदेवजी भगवान् ऐसे नाम कर्मवाला चेतन चतुष्टय गुण प्रकाशरूप आत्मा सो भाव ऋषभदेव कार्य साधक है ॥

(४) भाव निक्षेप यथा शरीर स्थित पूर्वोक्त चतुष्टय गुण सहित आत्मा सो भाव निक्षेप है परन्तु यह भी कार्यसाधक है यथाघृतसहित कुम्भ घृत कुम्भ इत्यर्थः ॥

(१) प्रश्न—जड पूजक, हमारे आत्माराम आनन्दविजय सवेगीकृत सम्यक्त्वशल्योद्धार देशीभाषाका सम्वत्१९६० काछपा हुआ पृष्ठ

७८ पंक्ति २२ में लिखा है कि जिस वस्तु में अधिक निक्षेप नहीं जान सके तो उस वस्तु में चार निक्षेपे तो अवश्य करे अब विचारना चाहिये कि शास्त्रकारने तो वस्तुमें नाम निक्षेप कहा है और जेठा मूढमति लिखता है कि जो वस्तुका नाम है सो नाम निक्षेप नहीं ॥

उत्तर–चेतन पूजक, हमारे पूर्वोक्त लिखेहुये सूत्र और अर्थ से विचारो कि जेठमलमूढमति है कि सम्यक्त्वशल्य छारके बनानेवाला मूढ ।।नि है क्योंकि सूत्रमें तो लिखा है कि जीव अजीवका नाम आवश्यक निक्षेप करे स। नाम निक्षेप अर्थात नाम आवश्यक है, कि आवश्यक ही में आवश्यक निक्षेप कर धरे ॥

यदि वस्तुत्व म ही वस्तु के निक्षेपे तुम्हारे पूर्वोक्त कहे प्रमाणसे माने जायें तदपि तुम्हारे

ही माने हुए मत को बाधक होवेंगे, क्योंकि भगवान् में ही भगवान् का नाम निक्षेप मान लिया भगवान्में ही भगवान्का स्थापना निक्षेप मानलिया तो फिर पत्थरका बिम्ब (मूर्ति) अलग क्यों बनवाते हो ॥

द्वितीय नाम निक्षेप तो भला कोई मान ही ले कि भगवान्में भगवान्का नाम निक्षेपदिया कि महावीर परंतु भगवान्में भगवान्का स्थापना निक्षेप जो पत्थर की मूर्ति जिस को तुम भगवान्का स्थापना निक्षेप मानते हो तो क्या उस मूर्तिको भगवान्के कंठद्वारा पेटमें क्षेपदेते हो अपितुनहीं वस्तुत्वकास्थापना निक्षेप वस्तुमें कभीनहीक्षेप किया जाता है ताते तुम्हारा उक्त लेख मिथ्याहै ऐसेही द्रव्य भाव निक्षेपों में भी पूर्वोक्त भेद है ॥

पूर्वपक्षी–अजो सूत्रकी गाथा जोलिखी है।

उत्तर–जो गाथा में लिखाहै सो गाथा ओर गाथा का अर्थ लिख दिखातो हुं तो आप को प्रगट हो जाएगा॥

जत्थय २ जं २ जाणिज्जो निक्खेव निक्खेवे निरविसेस जत्थवियन जाणिज्जा चउक्कय २ निक्खेवे तत्थ॥ १॥ अस्यार्थ॥

जिस २ पदार्थके विषयमें जो २ निक्षेपे जाने सो २ निर्विशेष निक्षेपे जिस विषय में ज्यादा न जाने तिस विषयमें चार निक्षेपे करे अर्थात् वस्तुके स्वरूपके समझनेको चारनिक्षेपसो करे नाम करके समझो स्थापना (नकसा) नकल करके समझो ओर ऐसेही पूर्वोक्त द्रव्य भाव निक्षेपकरके समझो परन्तु इस गाथामें एसा कहा लिखा है कि चारों निक्षेपे वस्तुत्व में ही

मिलाने वा चारों निक्षेपे वन्दनीय है, ऐसा तो कहा नहीं परन्तु पक्षसे हठसे यथार्थपर निगाह नहीं जमती मनमाने अर्थ पर दृष्टि पड़ती है, यथा हठवादियोंकी मण्डली में तत्त्वका विचार कहां मनमानी कहैं चाहे झूठ चाहे सच है।

पूर्वपक्षी–सम्यक्त्वशल्योद्धारके बनाने वाला तो संस्कृत पढा हुआ था कहिये उस ने यथार्थ अर्थ कैसे नहीं किया होगा ॥

उत्तर पक्षी–वस केवल संस्कृत बोलनेके ही गह्वरमें गलते हे परन्तु आत्माराम तो विचारा संस्कृत पढ़ा हुआ था ही नहीं, क्योंकि सवत् १९३७ में हमारा चातुर्मास लाहौर में था वहां ठाकुरदास भावड़ा गुजरांवालनगर वाले ने आत्माराम और दयानन्दसरस्वती के पत्रिका द्वारा प्रश्नोत्तर होते थे उनमें से कई पत्रिका

हमको भी दिखाइथीं कि देखो आत्मारामजी कैसे प्रश्नोत्तर करते हैं तो उनमें एक चिट्ठी दयानन्दवालीमें लिखा हुआ था कि आत्माराम जीको भाषाभी लिखनीनहींआती है जो मूर्खको मूर्ष लिखता है और इन की बनाई पुस्तकों की अशुद्धियोंका हाल धनविजय सवेगी अपनी बनाई चतुर्थस्तुतिनिर्णयशंकोद्धार संवत्१९२६ में अहमदाबाद के छपमें लिखचुके हैं।

हा एक दो चेला चाटा पढवा लिया होगा अरन पजाबी पीतांबरी तो बहुलनासे यूं कहते है कि वल्लभविजय पुजेरा साधु संस्कृत बहुत पढा हुआ है परन्तु वल्लभ अपनीकृत गप्पदी पका शमीर नाम पोथी संवत १९४८ की छपी पृष्ठ १४ में पंक्ति १२ मी लिखता है कि लिम्ब नेवाली महामृषावादो सिद्ध हुई—यह देखो वैया

करणी बना फिरता है स्त्रीलिंग शब्दको पुल्लिंग में लिखता है क्योंकि यहां वादिनी लिखना चाहिये था इत्यादि ।

हां संस्कृत आदि विद्यायोंका पढ़ना पढ़ाना तो हमभी बहुत अच्छा समझते हे जिससे बने यथारीति पढ़ो परन्तु संस्कृतके पढ़नेसे मोक्ष होता है और नहीं पढ़नेसे नही ऐसा नहीं मानते हैं यदि सस्कृत पढ़नेसे ही मुक्ति होजाय तो संस्कृतके पढे हुये तो ईसाई पादरी और वैष्णव ब्राह्मण आदिक बहुत होते हैं क्या सबको मुक्ति मिल जायेगी यदि केवल संस्कृतके पढ़नेसेही सत्य धर्मकी परीक्षा हो जाय तो वेदों के बनानेवालोंको आत्मारामजी अपने बनाये अज्ञान तिमर भास्कर पुस्तक संवत् १९४४ का छपा पृष्ट १५५ पंक्ति ९।१० में अज्ञानी निर्दय

मांसाहारी क्यों लिखते हैं क्या वे वेदोंके कर्त्ता संस्कृत नहीं पढ़े थे हे भ्रात । पढ़ना प ढाना कुछ और होता है और मत मतांतरोंके रहस्यका समझना कुछ और होता है अर्थात् पढ़ना तो ज्ञानावर्णी कर्मके क्षयोपस्मसे होताहै और मनकी शुद्धि मोहनी कर्म के क्षयोपस्म से अर्थात् सम्यक्त्व की शुद्धताके प्रयोगसेहोताहै ॥

प्रश्न–अजी यों कहते हैं कि प्रश्न व्याकरण के ७वें अध्ययनमें लिखा है कि तद्धितसमास लिंग कालादि पढ़े बिना वचन सत्य नहीं होता। उत्तर–यह तुम्हारा कहना मिथ्या है क्योंकि उक्तसूत्रमें तो पूर्वोक्त वचनकीशुद्धि कही है यों तो नहीं कहा कि संस्कृत बोलेबिना सत्य नहो नहीं होता है सूत्र सूयगडांगजी में ऐसा लिखा है ॥

आयगुत्तेसयाइंतें छिन्नसोयअणासवे तंसुद्ध धम्ममक्खाति पडिपुन्नमणेलिसं १ अस्यार्थः।

गुप्तात्मा मनको विषयोमे रोकनेवाले सदा इन्द्रियोंको दमनेवाले छेदे हैं श्रोत्र,पाप आवने के द्वारे जिनोंने अणाश्रवो अर्थात् सम्वर के धारकत(सो)पुरुष शुद्धधर्म आख्याती(कहते हैं) प्रतिपूर्ण अनीदृश अर्थात् आश्चर्यकारी अत्युत्तम,अब देखिये इसमें उक्त गुणवाले पुरुष को शुद्धधर्म कहनेवाला कहा है परन्तु व्याकरण ही पढे को सत्यवादी नहीं कहा ॥

यदि तुम्हारे पूर्वोक्त कहे प्रमाण माने जांय तो तुम्हारे बूटेराय जी आदिक संस्कृत नहीं पढे थे तथा पीतांबरी और पीतांवरीयोंके अनुयायी जो संस्कृत नहीं पढे हैं वे सब मिथ्या वादी हैं और असंयमी हैं उन की बात पर

कभी निश्चय (इतबार) करना नहीं चाहिये। अरे भोले भाइयो यथा पूर्वोक्त मिथ्यातियों के बनाये हुये संस्कृतमयी ग्रंथ हैं उनमें शब्द तो शुद्ध है परन्तु उन के वचन तो सत्य नहीं क्योंकि शब्दशुद्धि कुछ और होती है अर्थात् लिखने पढनेकी ल्याकत और सत्य बोलना कुछ और होताहै यथा कचहरीमें दो गवाह गुजरे एक तो इलमदार अर्बी फार्सी संस्कृत पढा हुआ था बकायदे (विभक्तिलिंग भूतभविष्यतादिकालसहित) बोलता था परन्तु इजहार झूट गजारता था और दूसरा बचाराकुछ नहीं पढा था सूधी देशी भाषा बोलता था परन्तु सत्य २ कहता था अब कहोजी सभामें आदर किसको होगा और दंड किसको अपितु चाहे पढा हो न पढा हो जो सत्य बोलेगा उसी की

मुक्ति होगी क्योंकि हम देखते हैं कि कई लोग ऐसे हें कि संस्कृतादि अनेक प्रकार की विद्या पढे हुये हे परन्तु,अभक्ष्य, भक्षणादि अगम्य-गमनादि अनेक कुकर्म करते हैं तो क्या उन की शुभगति होगी अपितु नहीं दुर्गति होगी यदि शुभ धर्म करेगे तो तरेंगे और जो कई अनपढ नर नारी धर्म करते हें और सुशील हैं दानादि परोपकारकरतेहैं तो क्याउनकी दुर्गति होगी अपितु नही अवश्य शुभगति होगी इत्यर्थः यथा राजनीतौ ॥

पठकः पाठकश्चैव,येचान्य शास्त्रचिंतकाः ।
सर्वेव्यसनिनो मूर्खा, यःक्रियावान् स पण्डितः ॥१॥ अस्यार्थः ॥

सस्कृतादि विद्याके पढने वाले पढाने वाले येच अन्यमत मतांतरोंके शास्त्रोंके चिंतक सर्व

व्यसनी अर्थात् पढनेका एक व्यसन पड़ा हुआ समझो विना धर्म क्रियाके मूर्खही है जो क्रिया वान्सोपण्डित जानिये ।१।

ऐसे ही अनुयोगद्वार सूत्रकी अन्त की गाथा में भाव है ॥ यथा

सव्वेसिंपिनयाण बहुविहवत्तव्वं निसामित्ता
तसव्व नयविशुद्ध जचरणगुणठ्ठिउसाहू १।

अर्थ–सर्व नय निक्षेपादि वक्तव्यता बहुत विधियों से धारण करे परन्तु नय आदिकों का जानना तब ही शुद्ध होगा जब चारित्र गुण में स्थित होय साधु ॥

(२) प्रश्न हम तो भगवान की मूर्तिमें भगवान् के चारों निक्षेपे मानते हैं ।

उत्तर–भला मूर्तिमें भगवान्के चारों निक्षेपे

उतार के दिखाओ तो सही कि योंही हठवाद करना ॥

पूर्वपक्षी–मूर्तिका नाम महावीर सो मूर्ति में महावीरजी का नाम निक्षेप है ॥

मूर्तिको महावीरजी की तरह ध्यानावस्थित आकार सहित स्थापन कर लिया अर्थात् मान लिया कि यह हमारा महावीर है सो मूर्ति में महावीरका स्थापना निक्षेप है ॥

मूर्तिका द्रव्य है सो भगवान्‌का द्रव्य निक्षेप है ॥

उत्तरपक्षी–यहा तो तुम चूके ॥

पूर्वपक्षी–कैसे ।

उत्तरपक्षी–मूर्तिका द्रव्य क्या है और भगवान् का द्रव्य क्या है ॥

पूर्वपक्षी–मूर्तिका द्रव्य जिससे मूर्ति बने

क्योंकि शास्त्रों में द्रव्य उसे कहते हैं।

जिससे जो चीज बने अर्थात् वस्तु के उपादान कारणको द्रव्य कहते हैं।

उत्तरपक्षी—तो मूर्ति का द्रव्य (उपादान (कारण) क्या होता है और भगवान् का द्रव्य उपादान कारण) क्या होता है।

पूर्वपक्षी—मूर्ति का द्रव्य (उपादान कारण) पाषाणादि होता है और भगवान्का द्रव्य (उपादान कारण) माता पिताका रज वीर्य आदि मनुष्यरूप उदारिक शरीर होते हैं।

उत्तरपक्षी—तो फिर तुम्हारा पूर्वोक्त कथन निष्फल हुआ कि जो तुमने मूर्ति के द्रव्य को भगवानका द्रव्य निक्षेप माना था क्या भगवान् का उपादान कारण पाषाण समझा था।

पूर्वपक्षी—नहीं नहीं।

उत्तरपक्षी–तो मूर्ति में भगवान्‌का द्रव्य निक्षेप नही पाया अब मूर्तिमें भाव निक्षेप उतारो परन्तु वह उतरना ही नहीं क्योंकि मूर्ति जड़ है और भगवान्‌जी चेतन हैं।

पूर्वपक्षी–अजी भाव तो हम अपने मिला लेते हैं।

उत्तरपक्षी–वाहजीवाह प्रथम तो मूर्ति में भगवान् का द्रव्य निक्षेप ही नही बन सकता है द्वितीय बड़ा आश्चर्य तुम्हारे कहने पर यह है कि तीन निक्षेपे तो और द्रव्यके अर्थात् मूर्ति के और एक निक्षेप अपना मिला लेना जैसे किसी एक मूढ़का एक प्रिय मित्र था वह एकदा कालवस होगया तब उस के घर के रोने (रोदन करने) लगे और कहने लगे कि हमारा कार्य साधक चेतन तो परलोक गया

और शरीर मुर्दा पड़ा है अब इस को फूंक दो तब वह मूढ मित्र बोला कि तुम कैसे मूर्ख हो जो अपने प्राणाधारको फूंकते हो, तब वह घर के बोले कि जिससे हमारी प्रीतिथी वे तो है ही नहीं यह निष्काम मुर्दा है तब वह मूढबोला कि इस का क्या बिगड़ गया है इसका नाम धर्मचन्द सोभी कायम है १ इस की स्थापना, कान, आख, मुख, हाथ, पैर आदिक अथवा यह मरा पुत्र पिता पति इत्यादि स्थापना भी कायम है २ इसका द्रव्य सो हाड मांसकी वह भी कायम है ३ तब घर के बोले कि यह तीन बातें तो कायम है परन्तु चौथी कायसाधक ज्ञान तो है ही नहीं तब वह मूढ बोला किज्ञान मेरी जो है तब वह रोते२ हसपड़े कि भलातेरी ज्ञानसे इस देहका क्या कामसिद्ध होगाइत्यर्थः

(३) पूर्व पक्षी–तुम मूर्तिको नहीं मानते हो
उत्तर पक्षी–नहीं।

पूर्वपक्षी–यदि तुम मूर्ति को नही मानते तो तीर्थंकर भगवान्का स्वरूप कैसे जानतेहोंगे॥

उत्तरपक्षी–शास्त्रके द्वारा भगवान्कीतारीफ सुनने से यथा कचन वर्ण शरीर १००८ लक्षण सिंहादि चिन्ह अष्ट प्रतिहार्य अध्यात्म चतुर परम ज्ञानादि गुण सहित भगवान् होते हैं, इत्यादि स्तुतियें सुनने से जानते हैं॥

पूर्वपक्षी–अजी तारीफ सुनने से मूर्ति के देखने में ज्यादावैराग्य आता है जैसे स्त्री की तारीफ सुनने से तो काम कम जागता है और स्त्री की मूर्ति देखके काम शीघ्र जागता है।

उत्तरपक्षी–तुम लोग कामादि विकारोंकेही सार जानते हो परन्तु वैराग्य की तुम्हें खबर

नहीं तारते कामराग की उपमा वैराग्य पर उ तारते हो विन सतगुरु हृदय के नयन कौन खोले अरे भोन्दे स्त्रीकी मूर्तियोंकोदेखकेतोसभी कामियोंका काम जागता होगा परन्तु भगवान् की मूर्तियों को देखके तुम सरीखे श्रद्धालुओं में से किसर को वैराग्य हुआ, सो बताओ? हे भाई! काम तो उदय भाव (परगुण है) उसका कारणभी स्त्री वा स्त्रीकी मूर्तिआदिभी परगुण हीहै और वैराग्यनिजगुण है उसका कारणभी ज्ञानादि निजगुण ही है इस का विस्तार मेरी बनाइ हुई ज्ञान दीपिका नाम पुस्तक में इसी प्रश्नके उत्तर में लिखा गया है अथवा किसी को किसी प्रकार मूर्तियें देखनेसे वैराग्य आभी जायतो क्या वह वैराग्य आनेसे पूर्वोक्त मूर्तियें आदिक वंदनीय होजायेंगी, जैसे समुद्र पाली

को चोरके बन्धनों को देखके वैराग्य हुआ और प्रत्येक बुद्धियोंको बैल वृक्षादि देखनेसे वैराग्य हुआ तो क्या वे चोर बैल बृक्षादि वंदनीय हो गये अपितु नहीं ॥

पूर्वपक्षी–आपने कहा सो ठीक है परन्तु वस्तुका स्वरूप सुनने की अपेक्षा वस्तुका आकार देखने से ज्यादा और जल्दी समझमें आजाता है, जैसे मेरु (पर्वत) लवण समुद्र भद्रशाल वन गंगा नदी इत्यादिकोंके लंवाई चौड़ाई ऊचाई आदिक वर्णन सुनके तो कम समझ बैठती है और उनके मांडले (नकसे)देख के जल्दी समझ आजाती है ऐसे ही भगवान् की तारीफ सुननेकी अपेक्षा भगवान् की मूर्ति देखनेसे जल्दी स्वरूप की समझ पड़तीहै।

उत्तर पक्षी–हांहां सुनने की, अपेक्षा (निस

घत) आकार (नकसा) देखनेसे ज्यादा और जल्दी समझ आती है यह तो हमभी मानते हैं परन्तु उस आकार (नकसे) को वंदना नमस्कार करनी यह मतवाल तुम्हें किसने पीलादी ।

पूर्वपक्षी–जो चीज जिसलायक होगी उस का आकार (नकसा) भी वैसे ही माना जाय गा अर्थात् जो वन्दन योग्य होंगे उनका आ कार (मूर्ति) भी वन्दी जायगी ॥

उत्तरपक्षी–यह तुम्हारा कहना एकांत मूर्खताई का सूचक है, क्योंकि तुम जो कहते हो जो चीज जिस लायक हो उस की मूर्ति भी उसी तरह से ही मानी जायगी, अर्थात् जो वन्दने योग्य होगें, उनकी मूर्ति भी वन्दी जायगी, तो क्या जो चीज खानेके योग्य होगी उस की मूर्ति भी खाई जायगी जो असवारी

के योग्य होगी, उस की मूर्ति पै भी असवारी होगी जैसे आमका फल खाने योग्य होता है, और उसकी मूर्ति अर्थात् किसी ने मिट्टी का काष्ठका,कागज का वरूदका आम बना लिया तो क्या वह भी खाने योग्य होगा किसी ने मिट्टी का काष्ठका घोड़ा बनाया तो क्या उस पै असवारी भी होगी अथवा पर्वत का नकसा देखें तो क्या उसकी चढाई भी चढे समुद्र का नकसा देखें तो क्या उसमें जहाजभी छोडें वा नदी का नकसा देखें तो क्या गोते भी लगावें अपितु नहीं ऐसेही भगवान्की मूर्ति कोदेखें तो क्यानमस्कार भी करें अपितु नहीं असली की तरह नकल के साथ वरताव कभी नहीं होता है,असल और नकलका ज्ञान तो पशु पक्षी भी रखते हैं ॥ यथा सवैया :—

झटही प्रवीन नर पटके बनाये कीर
ताहकीर देखकर मिल्ली हुन मारे है
कागज के कोर २ ठोर२ नानारग ताह
फुल देख मधु कर दुर हीते छारे है
चित्रामका चीता देख श्वान तासों डरे नाह
बनावटका अंडा ताह पक्षी हुन पारे है
असल हू नकल को जाने पशु पक्षी
राम मूढ नर जाने नाह नकल कैसे तारे है,

पर्वपक्षी–हा ठीकहै, असलकीजगह नकल काम नहा देसकी परन्तु बडों की अर्थात् भगवन्तों की मूर्ति का अदब तो करना चाहिये ॥

उत्तर पक्षी–हमने तो अपने बडों की मूर्ति का अदब करत हुय किसीको देखा नहीं यथा अपने बाप की मांये की मूर्तियें बनाके पूज रहे हैं और उसको नहुं (बेटे की बहु) उस स्व

सर की मूर्ति से घूंगट पल्ला करती है इत्यादि
हां किसी ने कुल रूढी करके वा मोह के वस
होकर वा क्रोध करके वा भूल करके कल्पना
करली तो वह उसकी अज्ञान अवस्था है हर
एककी रीति नहीं जैसे ज्ञाता सूत्र में मल्लि
दिन कुमारने चित्रशालीमें मल्लि कुमारी की
मूर्ति को देखके लज्जा पाई और अदब उठाया
और चित्रकारपै क्रोध किया ऐसे लिखा है तो
उस कुमारकी भूलथीक्योंकिहर एकने मूर्तिको
देख के ऐसे नही कियाक्योंकि यह शास्त्रोक्त
क्रिया नहीं है शास्त्रोक्त क्रिया तो वह होती है
कि जिस का भगवंत ने उपदेश किया हो कि
यह क्रिया इसविधि से ऐसे करनी योग्य है
नतु शास्त्रोंमें तो संबंधार्थमें रूढ़िभी दिखाइहै,
मन कल्पना भी दिखाई है और यज्ञभी यात्रा

भी चोरी भी वेश्या के शृंगारादि की रचना इत्यादि अनेक शुभाशुभ व्यवहार दिखाये हैं क्या वे सब करने योग्य हो जायेंगे, जैसे राय प्रश्नी मे देशोंका जीत व्यवहार (कुलरूढि) कुल धर्म नाग पडिमा (नाग आदिकों की मूर्तियों) का पूजन ॥

२ पद्मपुराण (रामचरित्र) में वज्रकरण ने अगूठीमेंमूर्ति कराइ ॥

३ विपाकसूत्रमें अवर यक्षकीपात्राअभगसेन [illegible]की चारीका करना पुरोहितने यज्ञमेंमनुष्यों का होम कराया राज की जयके लिये इत्यादि परन्तु यह सब उच्च नीच कर्म मिथ्यात्वादि पुण्य पाप का स्वरूप दिखान का संयधर्मेकथन आजाते हें, यह नहीं जानना कि सूत्र में कहे हें सो करने योग्य होगये, क्योंकि यह पूर्वोक्त

उपदेशमें नहीं हैं कि ऐसे करो उपदेशतो सूत्रों में ऐसा होताहै कि हिंसा मिथ्यादि त्यागने के योग्य हैं इनके त्यागने से ही तुम्हारा कल्याण होगा और दया सत्यादि ग्रहण करने के योग्य हैं इनके ग्रहण करने से कर्म क्षय होंगे और कर्म क्षय होने से मोक्ष होगा इत्यादि ॥

(४) पूर्वपक्षी–यह तो सब बातें ठीक हैं परंतु हमारी समझमें तो जो वदने नमस्कार करने के योग्य हे उस मूर्तिको भी नमस्कार करी ही जायगी ।

उत्तर पक्षी–यह भूल की बात है क्योंकि वंदना करने योग्यको तो वदना करी जायगी । परंतु उसकी मूर्ति को पूर्वोक्त कारणोंसे कोई विद्वान् नमस्कार नहीं करता है यथा नगरका राजा कहींसे आवे वा कहीं जाय तो उसकी

पेशवाइमें रईस लोगआय और नमस्कार करें भेट चढावें रोशनी करे मुकदमें पेशकरें परतु राजाकी मूर्ति को लावें तो पूर्वोक्त काम कौन करता है मुकदमें नकलें कौन उस मूर्तिके आगे पेश करताहै यदि करे तो मूर्ख कहावे।

पूर्व पक्षी—मुकदमोंकीवातें तो न्यारीहै हमतो ऐसे मानतेहैं कि जैसे मित्रकी मूर्तिकोदेखकर राग (प्रेम जागता है) ऐसेही भगवान् की मूर्ति को देखके भक्ति प्रेम जागता है।

उत्तर पक्षी—हां २ हम भीमानते हैं की मित्र का मूर्ति को देखके प्रेम जागता है परतु यह तो माह कर्म के रग हैं यदि उसी मित्र से लढ पडे तो उसी मूर्ति को देखके क्रोध जागता है हे भाई यह तो पूर्वोक्त परगुणका कारण राग द्वेष का पटा है समझनेकी बात तो यूं है कि

मित्र आवे तो उसके लिये पलंग विछादे मीठा भात करके थाल लगाके अगाड़ी रखदेकि लो जीवों और वहुत खातिर से पेश आवे यदि मित्र की मूर्ति बनी हुई आवे तो उसे देखकर खुशी तो मोह के प्रयोग से भले ही होजाय परंतु पलंग तो मूर्ति के लिये दौड़के न विछाये गा, न मीठे भात बनवाके थाल आगाड़ी धरे

रे गा तो उस को लोग मूर्ख कहेंगे हास करेंगे ऐसेही भगवान् की मूर्ति ो कोई खुश हो जाय तो हो जाय मस्कार कौन विद्वान् करेगा, और वल लौंग इलाची अंगूर नारंगी कौन ाने को देगा अर्थात् चढावेगा सिवा ानियों के । यथा :—

ाल लूचेकी, कूक पाडे सुनता नाही

राग रंग क्या आखों सेती देखे नाहीं । नाच नृत्य क्या ताक थइया ताक थइया ताकथइया क्याइकेन्द्री आगे पचेन्द्री नाचे यह तमासा क्या १ नासिकाके स्वर चाले नाहीं धूप दीप क्या मुखमें जिव्हा हाले नाहीं भोगपान क्या ताक थइया २ परम त्यागी परम वैरागी हार शृंगार क्या आगमधारी पवन विहारी ताले जिंदे क्या ताकथइया३साधु श्रावक पूजी नाही देवरीस क्या जीत विहारी कुल आचारी धर्मरीत क्या ताक ४ इति ॥

( ) पूर्व पक्षी—तुम मूर्तिको किस कारण नहीं मानते हो ॥

उत्तर पक्षी—लो भला शिरोशिर पदे सदका किधर होय मूर्ति को सो हम मूर्ति मानते हैं परतु मूर्ति का पूजन नहीं मानते हैं पूर्वोक्त

दृष्टांतोंसे कार्य साधक न होनेसे यथा दृष्टांत एक मिथ्यामति शाहूकार के घर सम्यक्ती की बेटी व्याही आई वह कुछक नौतत्त्व का ज्ञान पढ़ी हुई पंडिता थी और सामायिक आदि नियमों में भी प्रवीणथी तो उसकी सास उसे देवघर (मंदर) को लेचली तब वहां देहरे के द्वारे पाषाण के शेर बने हुयेथे उन्हे देखके वह बहू सासुके समझानेके लिये मूर्छा होगिरपड़ी तब सासुने जल्दी से उठाके छातीसे लगाली और कहा कि तू क्यों कांपती है बहु घबराती हुई बोली यह शेर खालेंगे तब सासु बोली ओ मूर्खे यह तो पत्थरहै शेरका आकार किया हुया है यह नहीं खा सक्के इनसे मत डर तब अगाड़ी चौंकमें एक पत्थरकी गौ बनी हुई पास बछा बना हुआ तब वहां दूध दोहने लगी तो सासु

ने फिर कहाकी तू मूर्खानन्दनी है पत्थरकी गौ कभी नहीं दूधकी आसापूरी करेगी, आगे इष्ट देव की मूर्ति को सासु झुक झुक सीस निवाने लगी और बहुको भी कहने लगी कि तूं भी झुक तब बहु बोली कि इसके आगे सरनिवाने से क्या होगा तब सासु बोली दूध देगा पूत देगा स्वर्ग देगा मुक्ति देगा तब बहु बोली यथा–

छप्पे, पर्वत से पाषाण फोडकर सिला जो ल्याये बनी गौ और सिंहतीसरे हरी पधराये।
जो देवे दूध सिंह जो उठकर मारे दाना मानें सत्य होय तो हरी निस्तारे तीनों का कारण एक है फल कार्य कहे दोय दोनों बातें झुठ हैं तो एक सत्य किम होय।

सासू लाजबाब हुई घर को आई फिर न गई॥

(६) पूर्वपक्षी–भला तुम मूर्ति को तो नहीं

मानते कि यह नकल है, अर्थात् रेत को खांड थाप के खाय तो क्या मूंह मीठा होय ऐसा ही पाषाण को राम मान के क्या लाभ होगा परंतु मैं पूछता हूं कि तुम नाम लेते हो भगवान् २ पुकारते हो, इस से क्या लाभ होगा अर्थात् खांड २ पुकारने से क्या मूंह मीठा हो जायगा।

उत्तरपक्षी–हम तो नाम भी तुम्हारीसी समझकी तरह नहीं मानतेहैं क्योंकि हम जानते हैं कि बिना गुणोंके जाने, बिना गुणों के याद में ग्रहें नाम लेने से कुछ लाभ नहीं यथा राम राम रटतयां बीते जन्म अनेक तोते ज्योंरटना रटी सम दम विना विवेक ? अपितु हम तो पूर्वोक्त गुणनिष्पन्न नाम अर्थात् गुणानुवंध (गुण सहित) नाम लेते हैं सो भाव में ही

दाखिल है जैसे शास्त्रों में लिखा है कि स्वाध्याय करना (पाठ करना) स्तोत्र पढना सो बड़ा तप है तांते गुणियों के नाम गुण सहित लेने से (भजन करन से) महा फल होता है अर्थात् अज्ञानादि कर्मक्षय होते हैं।

और तुम लोकभी बिना गुणों के नाम को अर्थात् नाम निक्षेप को नहीं मानते हो यथा किसी झीवर का नाम महावीर है तो तुम उस के पैरों में पडते हो।

पूर्वपक्षी–नहीं नहीं।

उत्तरपक्षी–क्या कारण।

पूर्वपक्षी–उसमें महावीरजी वाले गुण नहीं

उत्तर पक्षी–मूर्ति में क्या गुण हैं

पूर्वपक्षी–हमारेयशोविजयजीकृतहुंडीस्तवन नाम ग्रन्थ में लिखा है कि ढीले पसरये भेष-

धारी साधु को नमस्कार नहीं करनी (चेला) क्यों (गुरु) संयम के गुण नही (चेला) तो मूर्ति में भी गुण नहीं उसे भी नमस्कार न चाहिये (गुरुजी) मूर्ति में गुण नहीं है तोऔगुण भी तो नहीं है अर्थात् भेषधारी में संयम का गुण तो है नहीं परंतु रागद्वेषादि औगुणहैं इस से वंदनीय नही,और मूर्ति में गुण नहीं हैं तो रागद्वेषादि औगुण भी तो नहीं है इससे वंदनीय है, चेला चुप।

उत्तरपक्षी–चेला मूर्ख होगा जो चुपकररहा नहीं तो यूं कहता कि गुरुजी जिस वस्तुमें गुण औगुण दोनों ही नहीं वह वस्तु ही क्या हुई वह तो अवस्तु सिद्ध हुई ताते वंदना करना कदापि योग्य नहीं।

इसीकारण गुणानुकूल नाम मानना सो

हमाराही मत है तुम नामनिक्षेप मानना किस अपसे कहते हो हेभाई नाम तो गुणोंमें शामल ही माना जाता है जेसे कोई पार्श्वके नाम से गाली दे तो हमे कुछ द्वेष नहीं कई पार्श्व नाम वाले फिरते हैं यदि पार्श्वजी के गुण ग्रहण करके अर्थात् तुम्हारा पार्श्व अवतार ऐसे कह के गाली दे तो द्वेष आवे कि देखो यह कैसा दुष्ट बुद्धि है जो हमारे धर्मावतारको निंदनीय वचनसे बोलता है ताते वह नाम भी भाव में ही है यथा दृष्टान्त किसी देशके राजाके बेटे का नाम इन्द्रजीत था और एकराजाके महलों क पाउ धोबी रहता था उसके बेटेका नामभी इन्द्रजीत था एकदा समय वह धोबीका बेटा काल वस होगया तो वह धोबी विलाप करके रोने लगा कि हाय २ इन्द्रजीत हाय २ इन्द्र

जीत इत्यादि कहके पुकारते हुये और राजा ऊपर महलोंमें सुनता हुआ परन्तु राजाने मन में कुशील (बुरा नहीं) माना कि देखो मेरे बेटे को कैसे खोटे वचनकहके रोवे है अपितु राजा जानता है कि नामसे क्या है जिस गुण और क्रिया शरीरसे संयुक्त मेरे बेटेका नाम है वह यह नहीं ताते नाम तो गुणाकर्षणही होता है सो भाव निक्षेपमें ही है ॥

(७) पूर्व पक्षी भलाजो पोथीमें जो अक्षर लिखे होते हैं यह भी तो अक्षरोंकी स्थापनाही है इनको देखके जैसे ज्ञानकी प्राप्तिहोती है। ऐसे ही मूर्तिको देखके भी ज्ञान प्राप्त होता है

उत्तर पक्षी यह तुम्हारा कथन बड़ी भूलका है क्योंकि पोथीके अक्षरोंको देखके ज्ञान कभी नहीं होता है यदि अक्षरोंको देखके ज्ञान होता

तो तुम अपने घर के बालबच्चे स्त्री आदिक नगर देशके सब लोगोंके सन्मुख पोथीके अ अक्षर कर दिया करो बस वे अक्षरोंको देख के,ज्ञानी होजाया करेंगे फिरपाठशाला (स्कूल) मदरसों में पढवानेकी क्या गर्ज रहेगी हेभोले किसी अनपढके आगे अक्षर लिख धरे तो वह अक्षरोंकी स्थापना (आकार) नकसा देखके ज्ञान प्राप्त कर लेगा अर्थात् सूत्र पढ लेगा अपितु नहीं तो फिर तुम केसे कहते हो कि पोथीसे ही ज्ञान होता हे ॥

पर्व पक्षी हम तो यही समझरहे थे कि पोथी स ही ज्ञान होता हे परन्तु तुमही बताओ कि भला ज्ञान केसे होता हे ॥

उत्तर पक्षी तुम्हारी मति तो मिथ्यात्व ने बिगाड रक्खी हे तुम्हारे क्या बस की बात हे

अब मैं बताऊं जिस तरहसे ज्ञानहोता है पांच इन्द्रिय और छठा मन इनके बलसे और इनके आवरणरूप अज्ञान के क्षयोपस्म होने से मति श्रुति ज्ञानके प्रकट होनेसे अर्थात् गुरु(उस्ताद) के शब्द श्रोत्र (कान) द्वारा सुनने से श्रुतिज्ञान होता है कि (क) (ख) इत्यादि और चक्षुः(नेत्र) द्वारा अक्षरका रूप देखके मन द्वारा पहचाने तव मति ज्ञान होता है कि यह (क) (ख) इस विधि से ज्ञान होता है और इसी तरह गुरु के मुख से शास्त्रद्वारा सुनके भगवान् का स्वरूप प्रतीत (मालूम) होता है कि महावीर स्वामीजी की ७ हाथकी ऊञ्ची काया थी स्वर्ण वर्ण था सिंह लक्षण था अनन्त ज्ञानादि चतुष्टय गुण थे इत्यादि का जानकार होजाता है और वही मूर्तिको देखके पहचान सकता है कि यह महा

वीरजीकी मूर्ति बना रक्खी है परन्तु जिसने गुरुमुखसे श्रुत ज्ञान नहीं पाया अर्थात् भगवान का स्वरूप नहीं सुना उसे मूर्तिको देखके कभी ज्ञान नहीं होगा कि यह किसकी मूर्ति है जैसे अनपढ़ अक्षर कभी नहीं वाचसकता फिर तुम अक्षराकारको देखके तथा मूर्तिको देखके ज्ञान होना किस भूलसे कहते हो ज्ञान तो ज्ञान से होता है, क्योंकि अज्ञानीको तो पूर्वोक्त मूर्तिसे ज्ञान होता नहीं और ज्ञानीको मूर्तिकी गर्ज नहीं इत्यर्थ ॥

पूर्वपक्षी–यदि ज्ञानसे ज्ञान होता है तो फिर तुम पाथीयें क्यों वाचते हो ॥

उत्तरपक्षी–ओहो तुम्हें इतनीभी खबर नहीं कि हम पोथीयें क्यों वाचते हैं भला मैं बता देती हूं अपनी भूलके प्रयोगसे क्योंकि पहिले

महात्मा १४।१४ पूर्वके विद्याके पाठी औरब्रह्मा-
गम पाठी थे वे कौनसे पोथीयों के गाडेलिये
फिरे थे वे तो कंठाग्रसे ही गुरु पढ़ाते थे और
चेले पढ़ते थे परन्तु हमलोक कलिके जीव अ-
ल्पज्ञ विस्मृति बुद्धिवाले पढ़ा हुआ भूल २
जाते हैं ताते जो अक्षरोंके रूप पूर्वोक्त निमि-
त्तोंसे सीखे हुये हैं उनका रूप पहचानकर याद
में लाते हैं यों वाचते हैं ॥

पूर्वपक्षी–हम भी तो भगवान्‌कास्वरूप भूल
जाते हैं ताते मूर्तिको देखके याद करलेते हैं।

उत्तर पक्षी–अरे भोले भगवान् का स्वरूप
तो विद्वान् धार्मिक जनोंको क्षणभर भी नहीं
भूलता है क्योंकि जिस वक्त गुरुमुखसे शास्त्र
द्वारा सिद्ध स्वरूप सत्‌चिदानन्द अजर अमर
नराकार सर्वज्ञ सदा सर्वानन्द रूप परमे-

श्वर का स्वरूप तथा तीर्थंकर देवका अर्थात् धर्मावतारोंका अनन्त चतुष्टय ज्ञानादि एक सम स्वरूप सुना उसी वक्त हृदयमें अर्थात् मतिमें नकसा, होजाता है वह मरणपर्यंत नहीं विसरना तो फिर पत्थरका नक्सा (मूर्ति) को क्या करेंगे जिसके लिये नाहक अनर्थ आरम्भ उठाने पड़ें॥

(८) पूर्वपक्षी–भला किसी बालकने लाठी को घोड़ा मान रक्खा है तुम उसे घोड़ा कहो कि है बालक अपना घोड़ा थाम ले तो तुमे मिथ्या वाणीका दोष होय कि नहीं।

उत्तरपक्षी–उसेघोड़ाकहनेसेतोमिथ्यावाणीका दोष नहीं क्योंकि उस बालकने अज्ञानता से उसको घोड़ा कल्प रक्खाहै तातें उस कल्पना को मद्दे घोड़ा कह देते हैं परंतु उसे घोड़ा

समझके उसके आगे घासदानेका टोकरा तो नहीं रखदेते हैं यदि रक्खें तो मूर्ख कहावे ऐसे ही किसी बालक अर्थात् अज्ञानीने पाषाणादिका बिम्ब तथा चित्र बनाके भगवान् कल्प रक्खा है तो उसको हमभी,भगवान्काआकार कहदें परंतु उसे वंदना नमस्कार तो नहीं करें और लड्डू पेडे तो अगाड़ी नहीं धरे इत्यर्थः।

पूर्वपक्षी–खांडके खिलौने हाथी घोडादि आकार संचे के भरे हुये उन्हें तोड़के खाओ कि नहीं।

उत्तरपक्षी–उनके खानेका व्यवहार ठीक नहीं

पूर्वपक्षी–उसके खानेमें कुछ दोष है।

उत्तरपक्षी–दोष तो इतनाहीहैकि हाथीखाया घोड़ा खाया यह शब्द अशुद्ध है।

पूर्वपक्षी–यदि जड़पदार्थका आकार वा नाम

घरके तोडने खानेमें दोष है तो उसके वंदने पूजनेसे लाभ भी होगा।

उत्तरपक्षी–ओहो तुम यहाभी चूके क्योंकि कई क्रिया ऐसी होती हैं कि जिनके तोडने फोडने में दोष तो भावाश्रित होजाय परंतु उनके पूजनेसे लाभ न होय।

पूर्वपक्षी–यह क्या कोई दृष्टान्त है।

उत्तरपक्षी–यथाकोई पुरुष मिट्टी की गौ बनाके उस को हिंसा के भावसे छेदे (तोडे) तो उस पुरुषको गौ घातका दोष लगे वा नहीं

पूर्वपक्षी हां लगे।

उत्तरपक्षी–यदि कोई पूर्वोक्त मिट्टीकी गौबना के उसे दूधलाभकेभावसेपूजे और विनती करें कि हेगोमाता दूधदेतो ऐसे दूधका लाभहोय।

पूर्वपक्षी–नहीं परंतु हमको तो यही सिक्षा

रक्खा है कि मूर्ति तो कुछ नहीं कर सकती भावोंसे भगवान् मान लिये तो भावों का ही फल मिलेगा यथा राजनीतौ :—

नदेवोविद्यतेकाष्ठे, न पाषाणेनमृन्मये,भावेषु विद्यतेदेव, स्तस्माद् भावोहिकारणम् । १ ।

अर्थ—काठ में देव नही विराजते न पाषाण में न मिट्टी में देव तो भाव में हैं ताते भाव ही कारण रूप है । १ ।

उत्तरपक्षी—तुम्हारा यह कहनाभी उदय के जोर से है अर्थात् भूल का है क्योंकि कोई पुरुष लोहे में सोनेका भाव करले कि यह है तो लोहे का दाम परन्तु मैं तो भावों से सोना मानताहूं अब कहो जी उसे सोनेके दाम मिल जायेंगे अपितु नहीं । तो फिर इस धोखे में ही न रहना कि सर्वस्थान (सबजगह)

भावोंहीका फळ होता है क्योंकिभावोंका फल भी कथचित् पूर्वोक्त यथा तथ्य अर्थ में ही होता है ।

(९)पूर्वपक्षी–यह तो सबठीकहै परंतु जोअन जान लो क कुछ ज्ञाननहीं जानते उनको मंदिर में जानेका आलंबन होजाता है, इसी कारण मंदिर मूर्ति बनवाये गये हैं ॥

उत्तर पक्षी–यहतो फिर तुम अपने मन के राजा हो चाहे कैसे ही मन को लडालो परन्तु सिद्धान्त तो नहीं क्योंकि तुम प्रमाण कर चुके कि अनजानों के वास्ते मंदर मूर्तियें हैं, सो ठीक है क्योंकि चाणक्य नीति दर्पणमें भी योंही लिखा है अध्याय चार, श्लोक १९में अग्निर्देवो द्विजातीनां, मुनीनां हृदिदैवतम् ।
प्रमातिं स्वल्पबुद्धीनां, सर्वत्र समदर्शिनाम् ॥

अर्थ–द्विजाति ब्राह्मण आदिक अग्नि होत्री अग्नि को देवता मानते हैं । मुनीश्वर हृदय स्थित आत्म ज्ञान को देव मानते हैं अल्प बुद्धि लोक अर्थात् मूर्ख प्रतिमा (मूर्ति) को देव मानते हैं, समदर्शी सर्वत्र देव मानते हैं ॥ १९ ॥ और हमने भी बड़े बड़े पण्डित जो विशेष कर भक्ति अंग को मुख्य रखते हैं, उन्हों से सुना है कि यावद् काल ज्ञान नही तावत् काल मूर्ति पूजन है और कई जगह लिखा भी देखनेमें आया है यथा जैनीदिगम्ब राम्नायी भाई शमीरचन्द जैनप्रकाश उरदू किताब सन् १९०४ लाहौर में छपी जिसके सफा ३८ सतर ४ से ९ तक लिखता है–जो शषस वैराग्य भावको पैदाकरना चाहताहै उस के लिये भगवान् की मूर्ति निशान का काम

देती है और जब उसकेखयाल पुख्ता होजाते हैं तब फिर उसको मूर्तिके दर्शन करनेकी कुछ जरूरत नहीं रहती चुनाचे ऋषियों और मुनियों के लिये मूर्ति पूजन करना जरूरी नहीं है और यह भी कहते हैं गुडियों के खेलवत् अर्थात् जैसे छोटी छोटी बालिका (कुड़ियां) गुडीयों के खेल में तत्पर हो के गहने कपड़े पहराती हैं और व्याह करती हैं परंतु जब वे स्यानी बुद्धिमती होजाती हैं तब उन गुडीयों का अवस्तु जानके फेंक देती हैं ऐसेही जबतक हम लोगोंको यथार्थ तत्त्वज्ञान न होवे तबतक मूर्ति में तत्पर होकर अर्थात् दिल से प्रेमकर२ न्हावावें धुवावें खिलावें (भोगलगावें) शयन करावें जगावें इत्यादि पूजा भक्ति करें ॥

उत्तरपक्षी-क्योंजी गुडीयोंका खेल उन लड़

कीयों को स्यानी और वुद्धिमती होनेका कारण है अर्थात् गुडीयां खेलें तो वुद्धिमती होवें न खेलें तो वुद्धिमती नहीं होवें क्योंकि कारण से कार्य्य होता है ॥

पूर्वपक्षी-नहीं जी गुडीयोंका खेलना अकल मंद होनेका कारण नहीं है अकल मंद होने का कारण तो विद्यादि अभ्यासका करना है गुडीयोंका खेलना तो अविद्याका पोषण है ॥

उत्तरपक्षी–अब इस में यह भ्रम पैदा हुआ कि तुम मूर्ति पूजक कभी भी ज्ञानी नहीं होते क्योंकि हम लोक देखते हैं कि मूर्ति पूजकों ने मरण पर्यंत भी मूर्ति का पूजना नहीं छोड़ा तातें सिद्ध हुआ किमूर्ति पूजतेपूजते ज्ञान कभी नहीं होता यदि होता तो ज्ञान हुये पीछे मूर्ति का पूजना छोड़ देते तो हम भी जान लेते कि

हां इन्होंने ५-७ वष मूर्ति पूजी है जिससे ज्ञान होगया है, अव छोड़दी क्योंकि तुम कहचुके हो कि यावद्काल ज्ञान नहीं तावद्काल मूर्ति का पूजन है। हे भ्रात! बहुत कहानी क्या ज्ञान का कारण मूर्ति का पूजन नहीं है ज्ञान का कारण तो पूर्वोक्त ज्ञान का अभ्यास ही है तातें पूर्वोक्तअज्ञान क्रिया अर्थात् गुडियोंका खेलना छोडो ज्ञानी बनो।

(१०) पूर्वपक्षी—भलाजी तीर्थंकर देव तो मुक्त हो गये हैं(सिद्धपद) में हो गये हैं तो नमो अरिहंताण क्यों कहते हो।

उत्तरपक्षी—क्या तुम्हें इतनी भी खबरनहींहै कि, जघन्यपद २० तीर्थंकर तोअवश्य हीमनुष्य क्षेत्र में होते हैं, यदि अपमादि की अपेक्षा से कहोगे तो सूत्रसमवायांग आदिमें ऐसा पाठ है

नमो त्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं आदि गराणं तित्थगराणं जाव संपत्ताणं नमोजिनाणं जीयेभयाणं ॥

अर्थ—नमस्कार हो अरिहंत भगवंत जी को जो धर्मकी आदि करके चार तीर्थ अर्थात् साधु १ साध्वी २ श्रावक ३ श्राविका ४ इनकी धर्म रीति रूप मुक्ति मार्ग करके यावत् (जहां तक) सिद्ध पद में प्राप्त भये ऐसे जिनेश्वर को नमस्कार है जिन्हों ने जीते हैं सर्व संसारीभय (जन्म मरणादि) अर्थात् पूर्वले तीर्थंकर पद के गुण ग्रहण करके सिद्धपदमें नमस्कार कीजाती है क्योंकि अनत ज्ञानादि चतुष्टय गुण तीर्थंकर पद में थे वह गुण सिद्धपद में भी मौजूद हैं और यह भी समझ रखना कि जो नमो सिद्धाणं पाठ पढ़ना है इस से तो सर्व सिद्धपदको

नमस्कार है और जो नमो त्थुणका पाठ पढ़ना है इससे जो तीर्थंकर और तीर्थंकर पदवी पा कर परोपकार करके मोक्ष हुये हैं उन्हीं को नमस्कार है। इत्यर्थ ॥

(११) पूर्वपक्षी–यह तो आपने ठीक समझा या परन्तु एक संशय और है कि जो मूर्ति को न माने तो ध्यान किस का धरे और निशाना कहां लगावे?

उत्तरपक्षी–ध्यान तो सूत्रस्थानांगजी उवाई जी आदि में चेतन जड तत्त्व पदार्थका पृथक२ विचारने को कहाहै अर्थात् धर्मध्यानशुक्लध्यान के भेद चले हैं परंतु मूर्ति का ध्यान तो किसी सूत्र में लिखा नहीं हां ध्यान की विधि में ना साग्रादि पै दृष्टिका ठहराना भी कहा है परंतु हाथों का बनाया बिम्ब धर के उस का ध्यान

करना ऐसा तो लिखा देखने में आया नहीं और निसाना जिस के लगाना हो उस के लगावे परंतु रस्ते में ईंट पत्थर धरके उसमें न लगावे अर्थात् श्रुतिरूप तीर परमेश्वरके गुण रूपस्थल में लगाना चाहिये परंतु रस्तेमें पत्थर की मूर्ति को धरके उसमें श्रुति लगानी नहीं चाहिये क्योंकि जब श्रुति अर्थात् ध्यान मूर्ति में लगजायगा तो परमेश्वरके परम गुणों तक कभी नहीं पहुचेगा। इत्यर्थ ।

(१२) पूर्वपक्षी–आपने युक्तियों के प्रमाण देकर मूर्तिपूजा का खडन खूब किया और है भी ठीक परतु हमने सुना है कि सूत्रों में ठाम ठाम मूर्ति पूजा लिखी है यह कैसे है?

उत्तरपक्षी–सूत्रों में तो मूर्तिपूजा कहीं नहीं लिखीहै,यदि लिखी है तो हमें भी दिखाओ ।

पूर्वपक्षी—भला क्या तुम नहीं जानते हो।

उत्तरपक्षी—भला जानते तो क्या कहते हुये हमारी वृत्ति बिगड़ जाती अर्थात इस श्रद्धा वाले (चेतनपूजक) गृहस्थियोंके द्वारे भिक्षा न मांग खाते जडपूजक गृहस्थियों के द्वारे भिक्षा मांग खाते।

पूर्वपक्षी—कहते हैं कि सूत्र राय प्रश्नी, उपासकदशांग, उवाइ, ज्ञाता धर्मकथा, भगवती जी आदिक में लिखा है।

उत्तरपक्षी—ओह! तुम सावद्याचार्योंके लेख र भ खे में आकर और सूत्रकारों के रहस्य को न जाननेसे ऐसे कहते हो कि सूत्रोंमें मूर्तिका पूजन धर्म प्रवृत्तिमेंलिखा है लो अब जहांजहां सूत्रोंमें से मूर्तिपूजनका भ्रमहै वहां २ का मूल पाठ और अर्थ लिखके दिखा देतीहूं कि यहतो

मूलपाठ से अर्थ होता है और यह संबन्धार्थ होता है और यह टीका टब्बकारोंका सूत्रार्थसे मिलता अर्थ है यह पक्षहै यह निर्युक्ति भाष्य कारोंका पक्ष है और यह कथाकार गपोड़े हैं और इसमें यह तर्क वितर्क है इत्यादि प्रश्न उत्तर कर के लिखा जाता है।

प्रश्न—मूर्तिपूजक सूर्याभ देवने जिन पडिमा पूजी है।

उत्तर—चैतन पूजक देव लोकों में तो अकृत्रिम अर्थात् शाश्वती बिन बनाई मूर्तियें होती हैं और देवताओं का मूर्ति पूजन करना जीत व्यवहार अर्थात् व्यवहारिक कर्म होता है कुछ सम्यग् दृष्टि और मिथ्या दृष्टियों का नियम नही है कुल रूढीवत् समदृष्टि भी पूजते हैं, मिथ्या दृष्टि भा पूजते हैं।

और सूत्रार्थके वख स्पां ऐसाभी संभवहोता है कि यह देवलोकादिकों में किसी देव की मूर्तियेंहों क्योंकि उवाईजी सूत्र में श्रीमहावीर तीर्थंकर देवजीके शरीरका शिखा से नख तक वर्णन चलाहै वहां भगवान्के मशु अर्थात श्मश्रु (दाढी मूछें) चली हैं और चुचुवें नहीं चले हैं और सूत्रराय प्रश्नीजीमें जिन पडिमाका नख से शिखा तक वर्णन चला है वहां प्रतिमाके चुंचुये चल हैं और दाढी मुच्छा नहीं चलीहैं और जा जैनमतमेंसे पूर्वोक्त पाषाणापासक निकले ˜ ना ये भी जिन पडिमा (मूर्तियें) बनवाते हैं उन मूर्तियोंके भी दाढी मूछ का आकार नहीं बनवाते हैं इत्यथ और नमोत्थुणं क पाठ विषय में तर्क करोगे तो उत्तर यह है, कि यह पूर्वक भावसे मालूम होताहै कि येपता परम्परा

व्यवहार से कहते आते ह, अथवा भद्रबाहु स्वामीजीके पीछे तथा बाराबर्षी कालके पीछे लिखने लिखानेमें फर्क पड़ा हो अतः (इसी कारण) जो हमने अपनी बनाई ज्ञान दीपिका नाम की पोथी सम्वत् १९४६ की छपी पृष्ठ६८ में लिखा था कि मूर्ति खण्डन भी हठहै (नोट) वह इस भ्रम से लिखा गया था कि जो शाश्वती मूर्तियें हैं वह २४ धर्मावतारोंमेंकीहैं उन का उत्थापक रूप दोष लगनेकेकारणखण्डन भी हठ है,परतु सोचकर देखागया तो पूर्वोक्तकारण से वह लेख ठीक नहीं. और प्रमाणीक जैन सूत्रोंमें मूर्ति का पूजन धर्म प्रवृत्ति में अर्थात् श्रावक के सम्यक्तव्रतादि के अधिकारमें कहीं भी नहीं चला इत्यर्थः।

तर्क पूर्वपक्षी–यों तो हरएक कथन को यह देंगें कि यह भी पीछे लिखा गया है।

उत्तरपक्षी– नहीं नहीं ऐसा नहीं होसक्ता है क्योंकि जो प्रमाणीक सूत्रों में सविस्तार प्रकट भाव है उनमें कोईभी सूत्रानुयायी तर्क वितर्क अर्थात चर्चा नहीं करसक्ता है यथा जीव,अजीव, लोक,परलोक, बंध, मोक्ष, दया क्षमादि प्रवृत्तियों में परतु प्रमाणीक सूत्रों में धर्म प्रवृत्ति के अधिकार में प्रतिमाका पूजन नहीं चला है यदि चला होता तो फिर तर्क ान कर सकता था, और मत भेद क्यों होते हा रहा २ से चैइय शब्द को ग्रहणकरकरके अल्पज्ञजन चर्चा, क्या, लड़ाई करते रहते हैं जिस चेइय शब्दके चितिसंज्ञाने इत्यादि धातु से ज्ञानादि अनेक अर्थ हैं जिसका स्वरूप आगे

लिखा जायगा और इस पूर्वक कथन की स-
बूती यह है कि सूत्र उवाईजी में पूर्ण भद्र
यक्षके यक्षायतन अर्थात् मंदिरका और उसकी
पूजाका पूजाके फलका धनसंपदादिका प्राप्ति
होना इत्यादि भली भांति सविस्तार वर्णन
चला है और अंतगढ़जी सूत्रमें मोगर पाणी
यक्ष के मंदिर पूजा का हरणगमेषी देवकी
मूर्तिकी पूजा का और विपाकसूत्र में ऊंबरयक्ष
की मूर्ति मंदिर का और उस की पूजाका फल
पुत्रादि का होना सविस्तार पूर्वोक्त वर्णन चला
है परन्तु जिनमदिर अर्थात् तीर्थंकर देवजीकी
मूर्ति के मंदिरकी पूजाका कथन किसी नगरी
के अधिकारमें तथा धर्मप्रवृत्ति के अधिकार में
अर्थात् जहां श्रावक धर्मका कथन यथा अमुक
श्रावक ने अमुक तीर्थंकर का मदिर बनवाया

इस विधि से इस सामग्री से पूजाकरी वा यात्रा करी इत्यादि कथन कहीं नहीं चला यथा प्र देशी राजा को केशीकुमारजीने धर्म बताया श्रावक व्रत दिये वहां दयादान तपादि का क रना बताया परन्तु मंदिर मूर्ति पूजा नहीं ब ताइ न जाने सुधर्म स्वामीजीकी लेखिनी(कलम) यहां ही क्यों थकी हा इतिखदे परतु हे भव्य इस पूर्वोक्त कथन का तात्पर्य यह है कि यह जो सूत्रों में नगरियों के वर्णन के आद में पण भद्रादि यक्षोंके मंदिर चले हैं सो वह य क्षादि सरागी देव होतेहैं और बलि बाकुल आ दिक का इच्छा भी रखते हैं और राग द्वेष के प्रयोग से अपनी मूर्ति की पूजाऽपूजा देखके वर शराप भी देतेहैं ताते हरएक नगर की रक्षा रूप नगर के बाहर इनके मंदिर हमेशां से चले

आते हैं सांसारिक स्वार्थ होने से परंतु मुक्ति के साधन में मूर्ति का पूजन नहीं चला यदि जिन मार्ग में जिन मंदिर का पूजना सम्यक्त धर्म का लक्षण होता तो सुधर्म स्वामी जी अवश्य सविस्तार प्रकट सूत्रों में सर्व कथनों को छोड़ प्रथम इसी कथन को लिखते क्योंकि हम देखते हैं कि सूत्रों में ठाम २ जिन पदार्थो से हमारा विशेष करके आत्मीय स्वार्थ भी सिद्ध नहीं होता है उनका विस्तार सैंकड़े पृष्ठों पर लिख धरा है, यथा ज्ञाताजी में मेघ कुमार के महल, मल्लिदिन्न की चित्रसाली, जिन रखिया जिन पालिया के अध्ययन में चार बागोंका वर्णन, और जीवाभिगमजी रायप्रश्नी में पर्वत,पहाड़,वन,बाग पंचवर्ण के तृणादि का पुनःपुनः वर्णन विशेष लिखाहै प-

रंतु जिसको मूर्ति पूजक मुक्ति का साधन क हते हैं, उस मंदिर मूर्ति का विस्तार एक भी प्रमाणीक मूलसूत्र में नहीं लिखा यदि तर्क करें कि रायप्रश्नीजी जीवाभिगमजी में जिन मंदिर का भी अधिकार है उत्तर यह तो हम पहिले ही लिख चुके हैं कि देवलोकादिकों में अकृत्रिम अर्थात शाश्वती जिनमंदिरमूर्ति देवों के अधिकार में चली है परन्तु किसी देश नगर पुरपाटनमें कृत्रिम अर्थात् पूर्वोक्त श्रावकों क बनवाये हुयेभी किसी प्रमाणीकसूत्रमें चले हैं अपित नहीं तातें सिद्ध हुआ कि जैनशास्त्रों में सा ( ) श्रावकको मंदिर का पूजना नहीं चला है, अब जो पाषाण पासक चैइयशब्दको ग्रहण करके मंदिर मूर्ति का पूजना ठहराते हैं अर्थात् अर्थ का अनर्थ करते हैं इसका सवाद सुनो ॥

प्रश्न-(१४) पूर्वपक्षी उवाई जी सूत्र के आद ही में चम्पापुरी के वर्णनमें(वहवे अरिहन्त चेईय) ऐसा पाठहै अर्थात् चम्पापुरी में वहुत जिनमन्दिर हैं।

उत्तर पक्षी-उवाई जी में पूर्वोक्त पाठ नहीं है यदि किसी २ प्रतिमें यह पूर्वोक्त पाठ है भी तो वहां ऐसा लिखा है कि पाठान्तरे अर्थात् कोई आचार्य ऐसे कहते हैं इससे सिद्ध हुआ कि यह (प्रक्षेप) क्षेपक पाठ है॥

पूर्वपक्षी-इसीसूत्रमें अंवडजी श्रावकने जिन प्रतिमा पूजी है॥

उत्तरपक्षी-यह तुम्हारा कहना अज्ञानता का सूचक है अर्थात् सूत्र के रहस्य के न जानने का लक्षण है क्योंकि इस अंवड जी के मूर्ति पूजने का जो शोर मचाते हैं तो इस विषय

का में मूल पाठ और अर्थ और उस का भाव प्रकट लिख के दिखा देती हूं बुद्धिमान् पक्षको थोड़ी सी देर अलग धर के स्वयं ही विचार करेंगे कि इस पाठ से मंदिर मूर्ति का पूजना कैसे सिद्ध होता है।

उवाई जी सूत्र २२ प्रश्नों के अधिकार में प्रश्न १४ में लिखा है अम्मडस्सण परिव्वाय गस्स णोकप्पई, अणउत्थियएवा, अणउत्थिय देवयाणिवा, अण उत्थिय परिग्गहियाणिवा अरिहंत चेइयं वा, वंदित्तएवा नमंसित्तएवा जाव पज्जुवासित्तएवा णणत्थ अरिहंतेवा अरिहंत चेइयाणिवा।

अर्थ

अम्बड नामा परिव्राजक को (णोकप्पई) नहीं कल्पे (अणुत्थियएवा) जैनमत के सिवाय

अन्ययुत्थिक शाक्यादि साधु १ (अण) पूर्वोक्त अन्य युत्थिकों के माने हुये देव शिवशंकरादि २ (अणउत्थिय परिग्गहियाणिवा अरिहंतचेइय) अन्य युत्थिकों में से किसी ने(परिग्गहियाणि) ग्रहण किया (अरिहंतचेइय) अरिहंतका सम्यक् ज्ञान अर्थात् भेषतोहै,'परिव्राजक शाक्यादिका और सम्यक्त्वव्रत,वा अणुव्रत,महाव्रत रूप धर्म अंगीकार किया हुआ है जिनाज्ञानुसार ३ इन की (वंदितएया) वंदना (स्तुति) करनी (नमंसितएवा)नमस्कारकरनी यावत् (पज्जपासित एवा)पर्युपासना(सेवा भक्ति काकरना)नहींकल्पै

पूर्वपक्षी–यह अर्थ तो नयाही सुनाया।

उत्तरपक्षी–नया क्या इसपाठका यही अर्थ यथार्थ है।

पूर्वपक्षी—इस अर्थ की सिद्धिमें कोई दृष्टांत साक्षी है।

उत्तरपक्षी—हां २ सूत्र भगवती शतक २५ मा ६ नियंठों के अधिकारमें ६ नियठों में द्रव्यें तीनों लिंग कहे हैं सलिंग १ अन्यलिंग २ गृहि लिंग ३ अर्थात् भेषतो चाहे सलिंगी जिन भाषित रजो हरण मुख वस्त्रिका सहित होय १ चाहे अन्य लिंगी दंड कमण्डलादि सहित होय २ चाहे गृहिलिंगी पगडी जामा सहित होय परन्तु भावें सलिंगी है, अर्थात जिन आज्ञा नुसार सयम सहित है इत्यादि इसका तात्पर्य यह है कि किसी अन्य लिंगवाले साधुने अरिहन्त का ज्ञान अर्थात् भगवानने अपने ज्ञानमें जिस सयम वृत्ति को ठीक जाना है और कहा है उस आज्ञानुसार सयमको ग्रहण करलिया

है परन्तु अन्य लिंगको (भेषको) नहीं छोड़ा है तोउसको वंदना करनीनहीं कल्पै तथा अम्बड जी को ही समझलो कि भेषतो परिव्राजक का था और ज्ञान अरिहंतका ग्रहण किया हुआथा अर्थात् पूर्वोक्त संम्यक्त सहित १२ व्रत धारी श्रावक था परन्तु उसको भी श्रावक नमस्कार वंदना नहीं करते क्योंकि जो वड़ा श्रावकजान के उसे छोटे श्रावक नमस्कार करें तो अजान और लघुसंतानादि देखने वाले यों जाने कि यह परिव्राजक दंडी आदिक भी श्रावकोंकेवंदनीय हैं तो फिर वह हर एक पाखंडी बाह्य तपस्वी धूनी रमाने वाले चरस उड़ानेवाले कन्द मूल भक्षणकरनेवाले असवारियों पर चढ़नेवाले डेरे बन्ध परिग्रह धारियोंकी सगत करने लग जांय कि हमारे वड़े भी गंगा जी में मृतक के फूल

(अस्थि) गेरने जाते थे और ऐसे नशेबाज पार्वों को मत्था टेकते थे येही तारक हैं क्योंकि उन्हें अभ्यन्तर वृत्तिकी तो खबर नहीं पडती कि हमारे घडे व्यवहार मात्र क्रिया करते थे तथा श्रावक पद को नमस्कार करते थे तांते मिथ्यात्वको उन्नति देनेका हेतु जानके वन्दना करनी कल्पे नहीं। इत्यर्थः।

पूर्वपक्षी–क्या श्रावकों को श्रावक वन्दना किया करते हैं जो अम्बड श्रावकको न करो।

उत्तरपक्षी–हां जिनमार्गमें वृद्ध (वडे) श्रावकों का वन्दना करनेकी रीति है॥

पूर्वपक्षी–क्या किसी सूत्रमें चली है॥

उत्तरपक्षी–हां सूत्र भगवती शतक १२ मा उद्देशा १ सखजी श्रावक को पोखलीजी श्रावकने नमस्कार करी है यथा सूत्र॥

ततेणंसे पोक्खली समणोवासए,जेणेवपोसह साला, जेणे व संखे समणोवासए तेणेव उवा- गच्छ२इत्ता गमणागमणे पडिकम्मइ पडिकम्म- ईत्ता,संखं समणोबासयं वंद इनमंसइ,वंदइनमं सइत्ता एवं वायसी अर्थ ।

(ततेणं) तबते पोखली नाम समणोपासक (श्रावक) जे० जहां पोषधशाला जे० जहां सख नामा समणोपाशक (श्रावक) था (तणेव) तहां उवा० आवे आविने गम०इरिआवहीका ध्यान करे करके सखं०संखनामा श्रावकको (वंदइनमं सइरत्ता)वंदनानमस्कार करे करके(एवंवयासी) ऐसे कहता भया ॥

पूर्वपक्षी–भला इसका अर्थ तो आपने कर दिखलाया परन्तु (णणत्थ अरिहंतेवा अरिहंत चइयाणिवा) इसका अर्थ क्या करेंगे ।

उत्तरपक्षी—इसका जो अर्थ है सो कर दि खाते हैं परंतु क्या इस ही पाठ से तुम्हारा प र्वत फुडाना खानखुदाना पजावा लगाना म दिर मूर्ति बनवाना पूजा करानादिक सर्वारंभ जिनाज्ञा में सिद्ध होजायेगा कदापि नहीं लो यथार्थ सुनो (णणस्य) इतना विशेष अर्थात् इन के सिवाय और किसीको नमस्कार नहीं करूंगा किनके सिवाय (अरिहंतेवा) अरिहंत जी को (अरिहंत चइयाणिवा) पूर्वोक्त अरिहंत देवजी की आज्ञानुकूल संयम को पालनेवाले चैत्या ल्य अर्थात् चैत्यनाम ज्ञान आलयनाम घर ज्ञानका घर अर्थात ज्ञानी (ज्ञानवान् साधु)गण धरादिकोंको वंदना करूंगा अर्थात देवगुरु को देवपद में अरिहंत सिद्ध,गुरुपदमें आचार्य उपा ध्याय मुनि इत्यर्थ और यह पीताम्बरी मूर्ति

पूजक ऐसा अर्थ करते हैं णणत्थ अरिहंतेवा अरिहंतचेयाणिवा (णणत्थ) इतना विशेष इनके सिवाय और को वंदना नहीं करनी किनके सिवाय (अरहंतेवा) अरिहंतजी के (अरिहंतचेइयाणिंवा) अरिहंत देवकी मूर्तिके अब समझने की बात है कि श्रावकने अरिहंत और अरिहंतकी मूर्ति को वंदना करनी तो आगार रक्खी और इनकेसिवा सबको वंदना करनेका त्याग किया तो फिर गणधरादि आचार्य उपाध्याय मुनियों को वंदना करनी बंद हुई क्योंकि देव को तो वंदना नमस्कार हुई परन्तु गुरुको वंदना नमस्कार करनेका त्याग हुआ क्योंकि अरिहंत भी देव और अरिहन्तकी मूर्तिभीदेव, तो गुरु को वंदना किस पाठसे हुई ताते जो प्रथम हमनेअर्थ किया हैवही यथार्थहै।

पूर्वपक्षी-निरुत्तर होकर ठहर२ के बोला

कि यदि चेइय नामज्ञान का होता तो सूत्रोंमें ऐसा पाठ होताकि, मति चेइय श्रुतचेइय अवधिचेइय मन पर्जवचेइय केवलचेइय।

उत्तरपक्षी—सूत्र कर्ता की इच्छा किसी नाम से लिखे यदि मति चेइय ऐसा न लिखने से ज्ञानका नाम चेइयन माना जायगा तो फिर मूर्ति का नाम चेइय कहना निश्चय ही खडन हो जायगा क्योंकि सूत्रोंमें मूर्ति का नाम चेइय कहिं नहीं लिखाहे यथा ऋषभदेव चेइय महावीर चेइय नाग चेइय भूत चेइय यक्षचेइय इत्यावि यदि लिखा होतो प्रकट करो जहां कहींसूत्रों में मूर्तिके विषयमें पाठआता है यथा रायप्रश्नीजीसूत्र, जीवाभिगमजीसूत्र में(अठसय जिनपडिमा)नागपडिमा भूतपडिमा यक्ष पडिमा इत्यादि तथा अतगड जी सूत्र

(मोगरपाणी पडिमा)हरिणगमेषीपडिमाइत्यादि तो फिर किस करतूती पर चेइय शब्द का अर्थ मूर्ति २ पुकारते हो,

(१५) पूर्वपक्षी उपासक दशा सूत्रमें आनंद श्रावकने मूर्तिपूजी है।

उत्तरपक्षी-भला तो पाठ लिख दिखाओ लुको के (छिपाके) क्यों रक्खाहै

पूर्व पक्षी--लो जी लिखदेते हैं(प्रगट कर-देतेहैं) नो खलुमे भंते कप्पइ अज्ज पभी इचणं अणउत्थिए वा अण उत्थिय देवयाणि वा अणउत्थिय परि ग्गहियाइं वा अरिहंत चेइ याइंवा वंदितएवा नमंसित्तएवा ॥

उत्तरपक्षी-बसयही पाठ इसीपै मूर्तिपूजा क-हनेहो इसका तो खण्डन हमअच्छी तरह अभी ऊपर लिखचुके हैं फिर पीसेका पीसना क्या॥

और यहा (अरिहचेइय) यह पाठ प्रक्षेप अर्थात् नया डालाहुआ सिद्धहोताहै, क्योंकि किसीप्रति में है बहुलताई प्रतियोंमें नहीं है और उपासक दशाअगरजो तरजुमेमेंभी लिखाहै, कि यहपूर्वोक्त पाठ नयाडाला हुआ है, यथा उपासक दशासूत्र जिस्का ए एफ रुडोल्फहरनलसाहिबनेअगरेजी में तरजुमा कियाहै जोकि ई०सन् १८८५ में अैसियाटिक सोसाइटी बङ्गाल कलिकत्तामेंछपा है पृष्ठ २३ मूल मन्थ नोट १० और तर्जुमा पृष्ठ ३५ नोट९६ में यह लिखता है कि शब्द चेय्याइ ३ पुस्तकों में पाया अर्थात् विक्रमी सवत १६२१ की लिखी में सवत् १७४५ की सवत१८२४ की में चेइयाई ऐसा पद है और २ पुस्तकों में अर्थात संवत् १९१६ की संवत् १९३३की में अरिहृत चेइयाइ ऐसा पद है

इससे साफ साबत हुआ कि टीकामेंसे मूल में नया डाला है * अर्थात् टीकाकारोंने नया डाला है। और सुना है कि जेसलमेर के भण्डारे में ताड़पत्र ऊपर लिखीहुई उपासक दशाकी प्रति है संवत् ११८६ ग्यारांसै छयासी की लिखितकी उसमें ऐसा पाठ है,(अणउथ्थियपरिग्गहियाइ-चेइया)परन्तु (अरिहंतचेइयाइं) ऐसे नहीं हैं,यह

---

*Extract from note 96 at page 35 of the Uvásagadasáo, translated by A F Rudolf Hoernle, Ph D

The words *Cheïyāiṁ or Arihanta Cheïyāiṁ*, which the MSS here have, appear to be an explanatory interpolation, taken over from the commentary, which says the 'objects for reverence may be either Arhats (or great saints) or Cheiyas' If they had been an original portion of the text, there can be little doubt but that they would have been *Chêiyāni* The difference in termination, *pariggahiyani Chêiāiṁ*, is very suspicious

पक्षपातीयोंने प्रक्षेप किया है मिथ्या डिंम के सहारे के लियेबस पूर्वपक्षीओ अब द्रोपदी जी के पाठ का शरणालो ॥

(१६) पूर्वपक्षी–हांहाजी द्रोपदी जीकेमन्दिर पूजनेका प्रकट पाठ है इसमें तुम क्या तर्क करोगे ॥

उत्तरपक्षी–तर्क क्या हम यथार्थ सूत्रानुसार प्रमाण देके खंडन करेंगे, प्रथमतो तुम यहबता ओ कि जैनमत वालों के कुल में अर्थात जैनीयोंके घरमें मद मांस पकाया जाताहै वा नग ॥

पूर्वपक्षी–नहीं।

उत्तरपक्षी–तो फिर कपिलपुर का स्वामी द्रोपदराजा द्रोपदी के पिता के घर द्रोपदी के विवाह में मद्य मास के भोजन बनाये गये थे

और राजाओं के डेरों में मदिरा मांस भेजा गया है, ताते सिद्ध हुआ कि द्रौपदराजा के घर द्रौपदी के विवाह तक जैनमत धारण किया हुआ नहीं था और तुम कहते हो द्रौपदी ने जिनमदिर की पूजा करी क्या जिनमंदिर के पूजने वालों के घर मद मांस का आहार होता है अपितु नहीं तो सिद्ध हुआ कि द्रौपदी ने जिनेश्वर का मंदिर नहीं पूजा।

पूर्व पक्षी–हां हां द्रौपदी के विवाह में मद मांस सहित भोजन तो किये गये हैं, क्योंकि सूत्र श्रीज्ञाता जी अध्ययन १६ में द्रौपदी के विवाह के कथन में ऐसा पाठ है, (कोडु विय पुरि से सद्दावेइ २त्ता एवं वयासी तुझे देवाणुपिया विउलं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं सुरंच, महुच, मसंच, सिंधुच, पसन्नंच, सुबहु

अर्थात् असन १ पान २ खायम् ३ स्वायम ४ मद्य ५ मास ६ मधु ७ सिंधु ८ पसन्न ९ बहुत प्रकार के भोजन इत्यादि और जहा श्रावक आदिक दयावानोंके कुलों में जीमणका (जया फतका) कथन आता हे वहां ४ प्रकार का आहार लिखा हे यथा महावीर स्वामी जी के जन्म महोत्सव में महावीर स्वामी जी के पिता सिद्धार्थ राजा ने जीमण किया हे, वहा कल्पसूत्र के मूल में ऐसा पाठ हे (असण,पाणं खाइम, साइम,उवक्खडावेइ२त्ता) परन्तु द्रोपदी नाके जिनमंदिर पूजनेका पाठ तो खुलासा हे।

उत्तरपक्षी—पाठ भी लिखदिखाओ ॥

पूर्वपक्षी—लो (तएणं सावोवइ रायवरकन्ना जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ मज्जण घर मणुप्पविस्सइ एहाया कयबलिकम्मा कय

कोउय मंगल पायच्छित्ता सुद्ध पावेसाइं वत्थाइं परिहियाइं मज्जणघराउंपडिनिस्कमइ निस्कमइत्ता जेणेव जिनघरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छइत्ता जिनघर मणू पविसइत्ता आलोए जिनपडिमाणं पणामं करेइ लोमहत्थयं परा-मुसई एवजहा सुरियाभो जिन पडिमाओ अच्चेइ तहेव भाणियव्वं जावधुवंडहइ रत्ता वामंजाणु अंचेइ अंचेइत्ता दाहिण जाणु धरणि तलसि निहट्टु तिखत्तो मुद्धाणं धरणी तलंसी निवेसेइ निवेसेइत्ता इसिंपच्चुणमइ करयल जावकट्टु एव वयासि नमोथ्थुणं अरिहंत्ताणं भगवत्ताणं जाव संपत्ताण वंदइनमंसइ जिन घराओ पडिणिरकमइ।

अर्थ–तवते द्रौपदीराजवरकन्या जहां मज्ज-नघर (स्नान करने का मकान) था वहां आयी

आके मज्जन करके बलि कर्म किया (घर के देव पूजे) तिलक किया मगळ किया शुद्ध हुई अच्छे वस्त्र पहरे मज्जनघर से निकली जहां जिनघर मंदिर था वहा आई जिन पडिमां को देखके प्रणाम किया चमर उठा के फटकारा लगाया (चोरी लेके झरल लाया) जैसे सुरयाम देव ने जिन पडिमां की पूजा करी तेस करी कहनी धूप दीनी गोडे निमा के नमोथ्थुण का पाठ पढ के नमस्कार करी जिनघर से बाहर आई ।

उत्तरपक्षी–इन में कितना ही पाठ तो सूत्रों स मिलता है कितना तो नहीं मिलता ।

पूर्वपक्षी–वह किमना २ कैसे २

उत्तरपक्षी–प्रथुभा यह सुनने और देखने में

भी आया है कि अनुमान से ७।७०० सै वर्षोंके लिखितकी श्रीज्ञाता धर्म कथा सूत्र की प्रति है जिसमें इतना ही पाठ है यथा (तएणं सादोवइ रायवर कन्ना जेणेव मज्जण घरे तेणेव उवागच्छइ २त्ता मज्जनघर मणुप्पविसइ २त्ता एहायाकयबलिकम्मा कय कोउय मंगलपाय-छित्ता सुद्ध पावेसाइ वत्थाइं परिहियाइं मज्जण घराओ पडिणिक्खमइ २त्ता जेणेव जिनघरे णे। । वागच्छइं २त्ता जिनघरमणु पविसइ २त्ता जिन पडिमाणं अच्चणं करेइ२त्ता) बस इतनाही पाठ है और नई प्रतियों में विशेष करके पूर्वोक्त तुम्हारे कहे मूजब पाठ है ताते सिद्ध होता है कि यह अधिक पाठ पक्षपात के प्रयोग से प्रक्षेप अर्थात् नया मिलाया गया है ॥

पूर्वपक्षी-यदि तुम लोकों ने ही पक्ष से यह पाठ निकाल दिया हो तो क्या साबूती।

उत्तरपक्षी-साबूती यह है कि प्रमाणीक सूत्रोंमें और कहीं पूर्वोक्त श्रावक श्राविकाओंके धर्म प्रवृत्ति के अधिकार में तीर्थंकरदेवकी मूर्ति पूजा का पूर्वोक्त पाठ नहीं आया इसकारण से सिद्ध हुआ कि द्रोपदी ने भी धर्मपक्ष में मूर्ति नहीं पूजी ? और इस के सिवाय दूसरी साबूती यह है कि तुम्हारे माने हुये पाठ में सरयाभ देव की उपमा दी है कि जैसे सुरयाभ देव ने पूजा करी ऐसे द्रोपदी ने करी परन्तु श्रा का स्त्री की अर्थात् श्राविका को श्राविका की उपमा नदी यथा अमुका श्राविका अर्थात् सुलसा श्राविका रेवती श्राविका ने जैसे मूर्तिपूजा करी ऐसे द्रोपदी ने मूर्ति पूजा करी

अथवा आनन्दादि श्रावकों ने परन्तु किसी श्रावक श्राविकाने मूर्ति पूजी होती तो उपमा देते ना पूजी हो तो कहांसे दें हां जैसे देवते पूर्वोक्त जीत व्यवहार से मूर्ति पूजते हैं ऐसेही द्रौपदीने संसार खाते में पूजी होगी २।

पूर्वपक्षी–तीर्थंकर देवकी मूर्ति क्या संसार खाते में पूजते हैं।

उत्तरपक्षी–द्रौपदीने क्या तीर्थंकर की मूर्ति पूजी है यदि पूजी है तो पाठ दिखाओ कौन से तीर्थंकर की मूर्ति पूजी है यथा ऋषभ देवजी की शांतनाथजी की पार्श्व नाथजी की महावीरजी की अर्थात् संतनाथ जी का मंदिर था कि पार्श्व नाथ जीका मंदिर था कि महावीर स्वामी जी का मंदिर इत्यादि। ३

पूर्वपक्षी—तीर्थंकर का नाम तो नहीं लिखा है जिन घर जिन प्रतिमा पूजी यह कहा है।

उत्तरपक्षी—यहां संबंध अर्थ से जिन घर जिन प्रतिमा का अर्थ काम देवका मंदिर मूर्ति संभव होता है क्योंकि वर्तमान में भी दक्षिण की तरफ अकसर रज पूत आदिकों में रसमे हैं कि कुंवारीयें वर के हेतु काम देव महादेव और गौरी आदिक की मंदिरमूर्ति को पूजती हैं ऐसे ही द्रोपदी राजवर कन्या ने भी अपने विवाहके वक्त वर हेतु काम देव की मूर्ति पूजी होगी यथा ग्रन्थोंमे(रामायण)में सीता कुमारी ने स्वयंवर मंडपमेंजाते वक्त धनुषों की पूजा करी है रुकमणी कन्या ने ढाल सागर में वर के हेतु काम देव की पूजा की है इत्यर्थं

पूर्वपक्षी—कहीं काम देवको भी जिन कहाहै

उत्तरपक्षी–हां हैमी नाम माला अनेकार्थीय हेमाचार्य कृत में श्लोक है यथा वीतरागो जिनः स्यात् जिनः सामान्य केवली। कंदर्पो जिन स्स्यात् जिनो नारायण स्तथा १

अर्थ–वीत राग देव अर्थात् तीर्थं कर देव को जिन कहते हैं, सामान्य केवली को भी जिन कहते हैं, कंदर्प (काम देव) कोभी जिन कहते हैं, नारायण (वासु देवको) भी जिन कहते हैं ४ बस इन पूर्वोक्त चार कारणों से सिद्ध हुआ कि द्रौपदी ने जैनमत के अनुसार मुक्ति के हेतु वीत राग की मूर्ति नहीं पूजी है

पूर्वपक्षी–चुप ?

उत्तरपक्षी–इस पाठसे हमारे पूर्वोक्त कथन की एक और भी सिद्धी हुईकि हम जो चौदहमें प्रश्न अम्बड़जी के अधिकारमें लिख आयेहैंकि

चैत्य चैत्यानि (चेइयाणि) शब्दका अर्थ ज्ञान ज्ञान
वान, यति, आदि सिद्धहोताहै, मूर्ति (प्रतिमा) नहीं
क्योंकि जहांमूर्ति का कथन आवेगा वहांप्रतिमा
शब्द होगा, सो तुम अवअच्छी तरह आंखेंखोल
के द्रोपदी जी के पाठ को देखो कि यहां द्रोपदी
जीने मूर्ति पूजी है तो (प्रतिमा) पाठ आया है
(जिनपडिमाउ अचेइ) यदि तुम्हारे कहने के
बमूजव चेइय शब्द का अर्थ मूर्ति होता अर्थात्
मूर्ति को चैत्य कहते, तो यहां ऐसा पाठ होता
कि (जिन चेइय अच्चेइ) सो है नहीं यदि
कहीं टीका टब्बा कारों ने चेइय शब्द का अर्थ
प्रतिमा लिखाभीहै तो मूर्ति पूजक पूर्वाचार्योंने
पूर्वोक्त पक्षपात से लिखा है क्योंकि इसी तरह
जहां भगवती शतक २० मा उद्देशा ९ मा में
जंघा चारण विद्या चारण की शक्ति का कथन

आता है, जिस का पूर्वपक्षी पाषाणोपासक जल्दी ढोआ (भेट) ले मिलते हैं कि देखो जंघा चारण २ मुनियों ने मूर्ति को नमस्कार की है परन्तु वहां मुनियों के जाने का और मूर्ति के पजने का पाठ नहीं है अर्थात् अमुक मुनि गया अपितु वहां तो विद्या की शक्तिके विषय में गौतमजीका प्रश्न है और महावीर जी का उत्तर है।

(१७) पूर्वपक्षी–यहतो प्रश्नहमारा ही है कि जंघाचारण विद्याचारण मुनियों ने मूर्ति पूजी है यह पाठ तो खुलासा है,भगवती जी सूत्र में

उत्तरपक्षी–अरे भोले भाई उस पाठ में तो मूर्ति पूजा की गंधि (मुस्क) भी नहीं है और न किसी जैन मुनि ने किसी जड़ मूर्ति को वंदना नमस्कार करी कही है वहां तो पूर्वोक्तभाव से

भगवत के पूर्णज्ञान की स्तुतिकी कही हैक्यों कि ठाणांग जी सूत्र में, तथा जीवाभिगम सूत्र में नंदीश्वरद्वीप का तथा पर्वतों की रचना का विशेष वर्णन भगवत ने कियाहै और वहां शाश्वती मूर्ति मंदिरांका कथनभी है परन्तुवहा भी मूर्ति को पडिमा नाम से ही लिखा है यथा जिन पडिमा ऐसे है परन्तुजिन चेइय ऐसे नहीं और भगवतीजीमें जंघाचारण के अधिकार में (चेइयाइं वंदइ) ऐसापाठ है इस से निश्चय हुआकि जंघाचारण ने मूर्ति नहीं पूजी अर्थात् मूर्ति को वंदना नमस्कार नहीं करी यदि करी होता तोऐसा पाठ होता कि (जिन पडिमाओ वंदइ नमंसइता) तिससे सिद्ध हुआकि जंघा चारण मुनि ने (चेइयाइं वंदइ)इस पाठ से पूर्वोक्त भगवत के ज्ञान की स्तुति करी अर्थात्

धन्य है केवल ज्ञान की शक्ति जिस में सर्व पदार्थ प्रत्यक्ष हैं यथा सूत्र :-

जंघाचारस्सण भंते तिरियं केवइए गइ विसए पणत्ता गोयमा सेणं इतो एगेणं उप्पाणं रूअगवरे दीवे समोसरणं करेइ करइत्ता तहं चेइ याइं वंदइ वंद इत्ता ततो पडि नियत माणे विएणं उप्याएणं णंदीसरे दीवे समोसरणं करेइ तहं चेइयाइं वंदइ वंदइत्ता इहमागच्छइ इह चेइ याइं बंदइ इत्यादि। अर्थ :-

गौतमजी पूछते भये हे भगवन् जंघाचारण मुनिका, तिरछी गतिका विषय कितना है गौ-तम वह मुनि एक पहिली छाल में (कूदमें) रुचक वर दीपपर समोसरणकरता है (विश्राम करता है) तहां (चेइय वदइ) अर्थात् पूर्वोक्त

ज्ञान की स्तुति करे अथवा इरिया वही का ध्यान करनेका अर्थ भी समझ होता है क्योंकि इरिया वहीके ध्यानमें लोगस्स उज्जोयगरे कहा जाता है इसमें चोवीस तीर्थंकर और केवलीयों की स्तुति होती है और लोगस्स उज्जोयगरेका नाम भी चोवीस स्तव (चोवीसत्था) है फिर दूसरी छाल मे नंदीश्वरद्वीपमें समवसरण करे तहां पूर्वोक्त चैत्यवंदन करे फिर यहां अर्थात अपने रहनेके स्थान आवे यहा चैत्य वदनकरे अर्थात् पूर्वोक्त ज्ञान स्तुति अथवा इरिया वही चोवीस त्था करे, क्योंकि आवश्यकादि सूत्रोंमें कहा है ॥ इरिया गमनागमनकी निवृति हुए पीछे इरिया व[illegible] [illegible] क्रम बिन कोई कार्य करना कल्पे नहीं इत्यर्थः ॥

इसमें एक बात और भी समझनेकी है कि

यहां इस जगह (चेइयाइं वंदइ) ऐसा पाठ आया है अर्थात् ज्ञानादि स्तव परन्तु (चेइयाइं वंदइ नमंसइं) ऐसा पाठ नहीं आया क्योंकि जहां नमस्कार का कथन आता है वहां साथ नमंसइ पाठ अवश्य आता है ताते और भी सिद्ध हुआ कि वहां केवल स्तुति की गई है, नमस्कार किसी को नहीं करी यदि मूर्ति को नमस्कारकरी होती तो वंदइ नमं सइ ऐसा भी पाठ आता अब इस में पक्ष की(हठ करनेकी) कौनसी बात बाकी है ॥

पूर्वपक्षी–वन्दइ शब्द का अर्थ स्तुति करना कहां लिखा है ॥

उत्तरपक्षी–जगह २ सूत्रों में वन्दइका अर्थ स्तुति करना लिखा है यथा (वन्दइ नमं सइत्ता एवं वयासी) वन्दइ वन्दन (स्तुति) करके (नमं

सद्भ्या) नमस्कार करके (एव) अमुना प्रकार (वयासी) वकासी (कहता भया) इत्यादि तथा धातु पाठे आदि में ही लिखा है (वदि अभि वादन स्तुत्यो) अर्थात् वदि धातु अभिवादन स्तुति करनेके अर्थ में है,तथा अमरकोप द्वितीय काडे श्लोक ९७ में (वदिन स्तुति पाठका) अर्थ वदतेस्तुवते तच्छीलाववदिन इत्यर्थ ॥

(१८) पूर्वपक्षी–यह तो आपने प्रमाण ठीक दिया परन्तु भगवती सूत्र शतक ३ उद्देशक २ में असुरेंद्र चमरेंद्र प्रथम स्वर्गमें गया है वहां अरिहत चेइय अर्थात् अरिहतकीमूर्तिका शरणा लकर गया लिखा है और साधुका पाठ न्यारा आना है सो तुम यहा चेइय शब्द का क्या अर्थ करोगे क्योंकि यहा ज्ञानका शरणा लिया ऐसा तो सिद्ध नहीं होता है ॥

उत्तर पक्षी–लो इस का भी पाठ और पाठ से मिलता अर्थ लिख दिखाते हैं ॥

तएणंसे चमरे असुरिंदे असुरराया उहिं पउ जइ२त्ता मम उहिणा आभोएइ२त्ता इमेयारुवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था एवं खलु समणे भगवं महावीरे जंबूदीवे २ भारहे वासे सुसमार पुर नगरे असोगवणसंडे उज्जाणे असोग वर पायवस्स अहे पुढविशिला पट्टयंसि अट्ठम भत्तं पगिण्हित्ता एगराइयं महापडिम उवसंपज्जित्ताणं विहरइ तं सेयं खलु मे समणं भगवं महवीरं निस्साए सक्किंदं देविंदे देवरायं सयमेव अच्चासायत्तएतिकट्टु ॥

अर्थ–तब ते चमर असुरइंद्र असुरराजा अवधि ज्ञान करके महावीर स्वामीजी गौतम ऋषि को कहते भये कि मेरे को देख के एतादृश

अध्यवसाय उपजा इस तरह निश्चय समण भगवत महावीर स्वामी जम्बूद्वीप भारतक्षेत्र सुसुमार पुर नगरमें अशोक वनखण्ड उद्यानमें पृथ्वी शिलापट्ट उपर अष्टम भक्त (तेला) कर के एक रात्रिकी प्रतिज्ञा (१२ मी पडिमा) ग्रहण करके विचरते हैं, तो अब है मुझे श्रमणभगवन्त महावीर जी के निश्राय अर्थात् शरणा लेके सक्रेन्द्र देवइन्द्र देवोंके राजाको में आप जा के असातना करूं अर्थात् कष्ट दूं ऐसा करता भया, अब देखिये जो मूर्ति का शरणा लेना माना तो अधोलोक। चमर चंचाकी सभादिक मे भी मूर्तियें थीं, वहा ही उनका शरणा लेलेना। ...किन्तु नहीं तिरछे लोक जम्बूद्वीप में महावीरजी का शरणा लिया॥

फिर जब सक्रेन्द्रने विचारा कि चमर इन्द्र

ऊर्धलोक में आने की शक्ति नहीं रखता है परन्तु इतना विशेष है ३ मांहला किसी एक का शरणा लेके आसक्ता है ॥ यथा सूत्र ॥

णणत्थ अरिहंतेवा, अरिहतचेइयाणिवा अणगारे वा भावियप्पाणों, णीसाए उढ्ढंउप्पयन्ति ॥

अर्थ–(अरिहंतेवा) अरिहंतदेव ३४ अतिशय ३५ बाणी संयुक्त (अरिहंतचेइयाणिवा) अरिहत चैत्यानिवा अर्थात् चैत्यपद (अरिहंतछदमस्थ यति पद में) क्योंकि अरिहंत देव को जब तक केवलज्ञान नहीं होय तबतक पञ्चमपद (साधु पद)में होते हैं औरजव केवलज्ञान होजाता है तव प्रथम पद अरिहंत पद में होते हैं (अणगारे वा भावियप्पाणो) सामान्य साधु भावितात्मा इन तीनों में से किसी का शरणा लेके आवे। अब कहोजी मूर्तिपूजको इस पाठसे तुम्हारा मंदिर

पूजा का आरम्भ मुक्ति का पथ सिद्ध होगया अरे भाई जो मूर्ति का शरणा लेना होता तो सुधर्म्म देव लोक में भी मूर्तियें थी वहा ही शरणाहोजाता मृत्स मंडलमें भागा क्यों आता नहींतो तुमही पाठ दिखलाओ जहा चमरेन्द्रने मूर्ति का शरणा लिया लिखाहो।

पूर्वपक्षी–अजी तुमने (अरि हतचेयाइणिवा) इस का अर्थ अरि हंत चैरपपद यह किस पाठ से निकाला है

उत्तरपक्षी–जिस पाठसे तुम मूर्ति पूजकोंने ?वय चेइयं का अर्थ प्रतिमा वत् ऐसे निकाला ह क्याकि सूत्रों में ठाम२ जहां२ अरिहत देव जीका तथा,साधु गुरुदेवजीको वंदना नमस्कार का पाठ आता है वहाऐसा पाठ आता है (ति खुत्तो अया हिणं पयाहिण करि२ वान्दामि नमं

सामि सक्कारेमि समाणेमि कल्लाण मंगलं देवयं चेइयं पज्ज वा स्सामि मत्थएणवंदामि०) १

अर्थ–तीनवार प्रदक्षिणा करके वंदना करके नमस्कार करके सत्कार करके सन्मान करके कल्याण कारी देवयं नाम अरिहंत देवकी अथवा गुरुदेव की चेइयं नाम ज्ञान वान् की सेवाकरके मस्तक निमाके वंदना है मेरी इत्यर्थः और यह मूर्ति पूजक अर्थात् आत्माराम पीताम्बरी अपने बनाये सम्यक्तशल्योधार पोथे में विक्रमसंवत् १९४० के छापे का जिस कुरडी की दबी हुई दुर्गन्धी को २० वर्षपीछे वलभ विजय तथा जसवंतराय गृहस्थीने १९६० में लाहौर में फिर छप वाके उछाली है, अपना और अपने मतानुयायियों का शुभमति और शुभ गतिसे उद्धार करने के लिये और अनन्त संसार के

लाभ के लिये, सो सम्यक्त शल्योद्वार पृष्ठ २४२ पंक्ति १९।२२में लिखमेहें कि देवय चेइयं का अर्थ तीर्थंकर ओर साधु नहीं अर्थात तीर्थं कर को तथा साधु को नमस्कार करे तो यों कहे कि तुम्हारी प्रतिमा की तरह (वत्) सेवा करूं इति अय समझो कि (देवयं चेइयं) इस पाठमें देवयसे देव ओर चेइय सेमूर्ति(प्रतिमा) अर्थ किया परंतु तरह (वत्) अर्थात् यह उपमावाचीअर्थ कौनसे अक्षरस्त सिद्ध किया सो लिखो यह मन कल्पित अर्थ हुआ कि व्याकरणकी टांग भग्नी फिर ओर अज्ञताकी अधि कता देखाकि वंदना तो करे प्रत्यक्ष अरिहंत को ओर कहे कि प्रतिमाकी तरह तो अरिहंतजीसे प्रतिमा जड अच्छीरही क्योंकिउपमा अधिक की दीजाती हे यथा अपने सेठ (स्वामी) की

वंदना करे तो यों कहेगा कि तुमें राजा की तरह समझता ह परंतु यों तो ना कहेगा कि तुमें नौकर की तरह समझता हूं ऐसे ही कोई मत पक्षी मूर्ति को तो कहभी देवे कि मैं मूर्ति को भगवान् की तरह मानता हू इत्यादि ।

(१९) पूर्वपक्षी-हमारे आत्मारामजी अपने बनाये सम्यक्त्व शल्योद्धार में जिसका उलथा १९६० के साल विक्रमी, देशी भाषा में किया है पृष्ठ २४३ पक्ति ४ में लिखते हैं कि किसी कोष में भी चैत्य शब्द का अर्थ साधु (यति) नहीं करा है, और तीर्थंकर भी नहीं करा है कोषोमें तो (चैत्य जिनौक स्तद्विंबं चयैत्यो जिन सभा तरुः) अर्थात् जिन मदिर और जिन प्रतिमा को चैत्य कहाहै और चौतरे वन्न वृक्ष का नाम चैत्य कहाहै इनके उपरान्त और

किसी वस्तु का नाम चैत्य नहीं कहा है,

उत्तरपक्षी-देखो कानी हथनी की तरह एक तरफी वेल खाने वत् अपने माने कोष और अपने मन माने चैत्य शब्द के तीन अर्थ प्रमाण कर लिये और चैत्य शब्द के ज्ञानादि अर्थों की नास्ति करदी परन्तु चैत्य शब्द के जैन सूत्र में तथा शब्द शास्त्रों में बहुत अर्थ (नाम) चले हैं इन में से हम अब शास्त्रानुसार कई ज्ञानादि नाम लिख दिखाते हैं॥

ज्ञानार्थस्य चैत्य शब्दस्य व्युत्पत्ति प्रभण्यते चिती संज्ञाने धातुः कवि कल्पद्रुम धातु पाठे तकारांतचकाराद्यधिकारे ऽस्ति तथा हि चतेञ् याच्ञे चिती ज्ञाने चित् फङ च चिति फ स्मृतौ इत्यादि इंकारानुबंधस्तावद्य ये रिण् निषेधार्थ इतिपश्चात् चित् इति स्थिते

ततो नाम्युप धातकः सारस्वतोक्त सूत्रेण क प्रत्ययः तथा हेमव्याकरण पचमाध्यायस्य प्रथम पादोक्त नाम्युपांत्य प्राक्कृ हज्ञः कः अनेनापि सूत्रेणकः प्रत्यय. स्यात् ककारो गुण प्रधिषेधार्थ. पश्चात् चेतति जानाति इति चितः ज्ञानवानित्यर्थः तस्य भावः चैत्यं ज्ञान मित्यर्थः भावत स्तद्धितोक्तयण् प्रत्ययः

अब इस का मतलब फिर संक्षेप से लिखा जाता है,यथा ज्ञानार्थस्य चैत्य शब्दस्य व्युत्पत्ति. चिती सज्ञाने धातु. ईकार उच्चारणार्थः ततः कः प्रत्ययः ततो नाम्युपधेत्यनेन गुणः एव कृते चेततीति चेतः इति सिद्धम् १।

इस रीति से चैत्य शब्द का अर्थ ज्ञान सिद्ध करते हैं पण्डित जन तुम कहते हो, चैत्य शब्द

के नाम पूर्वोक्त तीन हो हैं चौथा है ही नहीं लो अब और सुनो,

चैत्यं चित्त सम्बन्धि धारणा शक्ति अर्थात् स्मरण रखने की शक्ति जिस को फारसी में हाफजा याद रखने की ताकत कहते हैं २

चैत्यचिता सम्बन्धि अर्थात् दाहाग्नि का प्रदवी ३

चैत्य जीवात्मा ४

चैत्य सीमा (हद) ५

चैत्य आयतन ६ (यज्ञ शाला) ७

चैत्यः जय स्तम्भ (फते की किल्ली) ८

च ४ आश्रम साधुओंके रहने का स्थान ९

चैत्य छात्रालय विद्यार्थियों के पढ़ने का स्थान १०

श्लोक)–चैत्यः[११]प्रसाद विज्ञेय, चेइ[१२]हरिरुच्यते
चैत्यं [१३]चेतना नामस्यात्, चेइ[१४]सुधास्मृता॥१॥ चैत्यं
[१५]ज्ञानं समाख्यात, चेइ [१६]मानस्य मानवं, चैत्यं
[१७]यति रुत्तमः स्यात्, चेइ[१८]भगवनुच्यते ॥ २ ॥ चैत्यं
[१९]जीव मवाप्नोति, चेइ [२०]भोगस्यारभनं, चैत्यं
[२१]भोगनिवर्तस्य, चैत्य [२२]विनउ नीचउ ॥ ३ ॥
चैत्यः[२३]पूर्णिमा चन्द्रः, चेई[२४]गृहस्यारंभनं, चैत्य [२५]गृह
मगवाहं, चेइ[२६]गृहस्यछादनम्॥४॥ चैत्यं [२७]गृहस्तम्भो
वापि, चेइ [२८]चवनस्पतिः, चैत्यं पर्वते [२९]वृक्ष, चेइ
वृक्षस्थूलयो ॥५॥ चैत्यं[३१]वृक्ष सारस्य, चेइ चतुः
[३२]कोणस्तथा, चैत्यं विज्ञान [३३]पुरुष, चेइ [३४]देहस्य

उच्यते ॥६॥ चैत्य गुणज्ञो ज्ञेय, चेइ च जिन शासनं इत्यादि ११२। नाम अलंकार सुरेश्वर वार्तिकादि वेदान्ते शब्द कल्पद्रुम प्रथम खण्ड पृष्ठ ८,२ चैत्य क्लीपुं आयतनम् यज्ञ स्थान देवकुल यज्ञायतनं यथा यत्र यूपा मणिमया श्चैत्या श्चापि हिरण्मया। चैत्य पुं करिभ कुञ्जर इत्यादि और ग्रंथोंमें चले हैं।

अब इन पूर्वपक्षी हठ वादियों का पूर्वोक्त कथन कौन से पातालमें गया।

(२०) पूर्वपक्षी–इस पूर्वोक्त लेख से तो चैत्य [illegible] का ज्ञान और ज्ञानवान् यति आदिक [illegible] हैं परन्तु हम यह पूछते हैं कि मूर्ति पूजन म [illegible] दोष हैं।

उत्तरपक्षी–सूत्रानुसार षट्कायारंभादि दोष

हैं ही क्योंकि भगवत का उपदेश निरवद्य है यथा श्रीमद्आचाराङ्गजी सूत्र प्रथम श्रुत,स्कंध चतुर्थ अध्ययन सम्यक्त्वसार नामा प्रथम उदेशक।

सेवेमि जेय अतीता जेय पडुपणा जेय आगमिस्सा अरहंतभगवता ते सव्वे एव माइ क्खति एवं भासंति एवं पणवेंति एवं परूवेंति सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता ण हंत्तव्वा णअझावे यव्वा णपरिघे यव्वा णउद्दवे यव्वा एसधम्मे सुद्धः णितिए सासए समेच्च लोयं खेदणेहिं पवेदिते :-

अर्थ-गणधरदेव सूत्र कर्ता कहते भये जे अतीत काल जे वर्तमानकाल आगामि काल अर्थात् तीन काल के अरि हंत भगवंत ते सर्व ऐसे कहते हैं, ऐसे भाषते है ऐसे समझाते हैं

ऐसे उपदेश करते हैं सर्व प्राणी सर्व भूत सर्व जीव सर्व सत्व को अर्थात स्थावर जंगम जीवों को मारना नहीं ताडना नहीं थापना नहीं तपाना नहीं प्राणों से रहित करना नहीं यही धर्म शुद्ध है) नित्य है शाश्वत है, सर्व लोक केजाननेवालोंनेऐसा कहा है ॥इति॥

और दूसरा वडा दोष मिथ्यात्व का है,क्यों कि जड को चेतन मान कर मस्तक झुकाना यह मिथ्या है यथा सूत्र –

(जीव ऽजीव सन्ना,अजीवे जीव सन्ना)इत्या दानि अर्थ जीवविषय अजीवसंज्ञा अजीवविषय ज संज्ञा, अर्थात जीव को अजीव समझना अजीव को जीव समझना इत्यादि १० भेद मिथ्यात्वके चले हैं ॥

(२१)पूर्वपक्षी–महा निशीथ सूत्रमें तो मंदिर

वनवाने वालेकीगति १२ में देवलोककीकही है

उत्तरपक्षी–महा निशीथ में तो ऐसा कहीं नहीं कहा है तुम मत पक्ष से कल्पित उदाहरण (हवाले) देके मूर्ति पूजा के आरंभ में दृढ विश्वास कराते हो।

पूर्वपक्षी–अजी वाह कल्पित वात नही है देखो निशीथ का पाठऔरअर्थ लिख दिखातेहैं, (काउंपि जिणायणेहिं मंडिया सव्व मेयणिवट्टं दाणाइ चउक्कयेण,सढो गच्छेज्जच्चुयं जाव) ॥

अर्थ–जिन मकान अर्थात् मंदिरों करके मंडितकरेसर्वमेदिनी अर्थात् संपूर्ण भूमडल को मंदिरो करके भरदे (रचदे)दानादि चार करके अर्थात् दान शील तप भावना, इन चारों के करनेसे श्रावक जाय अच्युत १२में देव लोक तक।

उत्तरपक्षी–इस पूर्वोक्त पाठ अर्थ को तुम

अमर दृष्टि से देखो और सोचो कि इसमें मंदिर वन वान का खण्डन है कि मण्डन है अपितु साफ खण्डन किया है।

पूर्वपक्षी–है यह कैसे ॥

उत्तरपक्षी–कैसे क्या देख इस पाठ में मूर्ति पूजा क हठ करन वालों को मंदिर आदिक के आरंभ को न कुछ दिखाने क लिये मंदिर को उपमा वाची शब्दमें लाके दान, शील,तप,भावनाकी अधिकता दिखाई है, अर्थात् ऐसे कहा है कि मंदिर करके चाहे सारी पृथ्वी भरदे तो भी क्या होगा दान शील तप भावना करके बारह १२ में देव लोक तकजाते हैं।

पूर्वपक्षी–उपमा वाची किस तरह जाना।

उत्तरपक्षी–यदि उपमा वाची न माने तो ऐसे सिद्ध होगा कि किसी श्रावकको १२ मा

देव लोक ही कभी न हुआ न होय क्योंकि इस पाठ में ऐसे लिखा है. कि संपूर्ण पृथ्वी को मदिरों करके रच देवे अर्थात् मदिरो करके भरे तब १२ में देव लोक में जाय सो न तो सारी मेदिनी (पृथ्वी) मंदिरों करके भरी जाय न १२ मां देव लोक मिले ताते भली भांति से सिद्ध हुआ कि सूत्र कर्ताने उपमादी है कि मंदिरों से बचा होगा दानादि,चार प्रकार के धर्म्म से देव लोक वा मुक्ति होगी न तो सूत्र करता सीधा यों लिखना

(काउंपिजिणायणेहिं सड्ढोगच्छेज्ज अच्चुयं) अर्थ जिन मदिरों को बनवा के श्रावक १२ में स्वर्ग में जाय बस यों काहे को लिखा है, कि मडिया सव्व मेयणी वट्टं, दाणाइचउक्केपेणं सढोगच्छेज्जअच्चुयं

अर्थ मदिम करे सारी मेदिनी मदिरोंसे परन्तु दानादि धार करके १२ में देव लोक में जाय इत्यथ द्वितीय इसमें यह भी प्रमाण हैं कि प्रथम इस ही निशीथ के ३ अध्याय में मूर्त्ति पूजा का खण्डन लिखा है जिस का पाठ और अथइम २४ मेंप्रश्न के उत्तर में लिखें गे, ताते निश्चय हुआ कि यहां भी खण्डन ही है क्योंकि एक सूत्र में दो बात तो हो ही नहीं सकती हैं कि पहिले मूर्ति पूजा खण्डन पीछे मण्डन यदि एसा होतो वह शास्त्रहीक्या इत्यर्थ

(२२) पूर्वपक्षी–ठहरो के क्यों जी (कयबलि कम्मा) इस पाठका अर्थ क्या करते हैं।

उत्तर पक्षी–हस कर जो इसका अथ है स्नानका पूर्ण विधिका सो करेंगे बलिकर्म बल वृद्धिकरनेके अथमें बल धातुमे बलिकम आदि

अनेक अर्थ होतेहैं यथा वलयति वलं करोति देह पुष्टौ यौगिकार्थश्चेति क्योंकि दक्षिण देशादिकोमें विशेष करके वलवृद्धिके लिये औषधियों केतेल मल मलके उवटना (पीठी) करकेस्नान करते हैं तथापि सूत्रों में सम्बंधार्थ है क्योंकि सूत्रों में जहां स्नान की विधि का संक्षेप से कथन आता है वहां ही कयवलिकम्मा शब्द आताहै और जहां स्नानकी विधिकापूराकथन लिखा है वहां वलि कम्मापाठ नहीं आता है तथा बलि, दान अर्थ में भी है, यथा शब्द कल्प द्रुम तृतीय काण्डे बलिः पुं वल्यते दीयते इति वलदाने तथा गृहस्थानां वलिरूप भूत यज्ञस्य प्रतिदिन कर्तव्य तथा तस्य विस्तृतिरुच्यते गृहस्थ से करने लायक पांच यज्ञोंमें से "भूत यज्ञ" वलिकम्मं ततः कुर्यात्) यथा पञ्चान्न

में भी ब्याह के समय कुमार कुमारीको स्नान कराके कुछ दान देते हैं (वारा फेरा करते हैं) तथा नवग्रह बलियथा (ग्रह आदिक का बल उतारने को भी दान करते हैं) इत्यादि तथापि कहीं २ टीका टब्बामें रूढिसे कयबलि कम्मा का अर्थ घरकादेवपूजा लिखा है फिर पक्षपाती उसका अर्थ करते हैं कि श्रावकों का घरदेव तीर्थंकरदेव हाता है और नहीं तो यह कहना ठीक नहीं क्योंकि तीर्थकरदेवघरके देव नहीं होते हैं तीर्थकरदेवतो त्रिलोकीनाथ देवाधिदेव होते हैं घरकदेव तो पितर दादे या,दाये,भूत य आदि होते हैं, यथाकोईकुलदेवी(शासनदेवी) काईभैरुक्षेत्रपालादिपूजते हैं॥ पूर्वपक्षी-श्रावक नेतो किसीदेवकासहायनहींवछना॥ उत्तरपक्षी-सहायबछना कुछओरहोताहैकुलदेवका मानना

संसार खाते में कुछ और होना है तुम्हारे ही ग्रथों में २४ भगवान् के शाशन यक्ष यक्षनी लिखे हैं उन्हें कौन पूजता है इत्यर्थः यदि तुम वलिकर्म का अर्थ देवपूजा करोगे तो जहां उववाइ जीसूत्रसे कौनक राजा तथा कल्प मे सिद्धार्थ राजाकी स्नान विधिका संपूर्ण कथन आयाहै, वहांवलिकम्मं पाठ नहीहे और जहा रायप्रश्नी में कठियारा अरणी की लकड़ी वालेने वन में स्नान किया जिस की तेल मलने आदिक की विधि नहीं खोली है,वहां वलि कर्म पाठ लिखा है, अब समझने की वात है, कि उस कठियारा पामरने तो घरदेव की वहां उजाड में पूजा करी जहां घर ना घर देव और उन उक्त उत्तम राजायो की देव पूजा उड गई, जो वहां कय वलि कम्मा पाठ ही नहीं,अरे भोले ऐसे हाथ

पैर मारनेसे क्या मंदिर मूर्ति पूजा जैन सूत्रोंमें सिद्ध होजाय गी, और क्या उक्त पाठ आविक ओस की बूंदे टटोल २ के मंदिर पूजाके आरम्भ की सिद्धि के आसा रूपी कुम्भको भर सकोगे, अपितु नहीं क्योंकि पूर्वोक्त गणधर आचार्य आगम ज्ञानी यदि मूर्ति पूजा को धर्म का मूल जानते तो क्या ऐसे भ्रम जनक शब्द लिखने और मंदिर मूर्ति पूजा का विस्तार लिखने में ही कलम खेंचते, परन्तु भगवान्का उपदेश ही नहीं मंदिर पूजादि मिथ्यारंभ का तो लिखते कहां से क्योंकि देखो सूत्र उत्राध्ययन अध्ययन

म ७२ बोलों का फल गौतम जीने तप संयम के विषय में पूछे हैं, और भगवनजीने श्रीमुखसे उत्तर फरमाये हैं और निशीथादि में साधु को बहुत प्रकार के व्यवहार वस्त्र पात्र

उपाश्रय आदि का लेना भोगना आहार पानी लेना देना वलिकि दिशा फिर के ऐसे हाथ पूछने धोने आदिक की विधि लिखदी है विधि रहित का दंड लिखदिया है परन्तु मूर्ति पूजाका न फल लिखा है न विधि लिखी है न ना,पूजने का दंड लिखा है,

(२३) पूर्वपक्षी–ग्रंथों में तो उक्तपूजादि के सर्व विस्तार लिखे हैं

उत्तरपक्षी–हम ग्रथों के गपोड़े नही मानते है हां जो सूत्र से मिलती बात हो उसे मान भी लेते हैं परन्तु जो सावद्याचार्यों ने अपने पास-स्थापनके प्रयोग अपनी क्रियायों के छिपाने को और भोले लोकों को वहकाकर माल खाने को मन मानें गपोड़े लिख धरे हैं निशीथ भाष्यवत् उन्हें विद्वान् कभी नही प्रमाण करेंगे ।

पूर्वपक्षी–इसमें क्या प्रमाण है कि ३२ सूत्र मानने और न मानने,

उत्तरपक्षी–इसमें यह प्रमाण है कि सूत्र नदी जीमें लिखा है कि १० पूर्व अभिन्न धोधीके वनाये हुए तो सम सूत्र अर्थात् इससे कमती के वनाये हुए असमंजस क्योंकि १० पूर्व से कम पढ़े हुए के वनाये हुए ग्रथों में यदि किसी प्रयोगसे मिथ्या लेखभी होय तो आश्चर्य नहीं यथा –

सुत्तं गणहर रइयं, तहेव पत्तेय बुद्ध रइयचा।
मयकेवलीणारइअ,अभिन्नवशपुव्विणारइया१।

र्थ–सूत्र किस को कहते हैं गणधरों के र र ा ये को तथा प्रत्येक बुद्धियों के रचे हुये का नुन त्र न के रचे हुयेको १० पूर्व संपूर्ण पढ़े हुये क रच हुये को इत्यर्थ तातें ३२ सूत्रतो

उक्त आगम विहारियों के वनाए हुए हैं और जो रत्न सार शत्रुजय महात्म्य आदि तथा १४४४ वा कितने ही ग्रंथ हैं वह सावद्याचार्यों के वनाये हुए हैं जिन्हों में साल संवत् का प्रमाण और कर्ता का नाम लिखा है अर्थात् पूर्वोक्त आगम विहारी आचार्यों के वनाये हुए नहीं है, थोडे कालके वनाये हुए हैं उन में सावद्य व्यवहार पर्वत को तोड़ कर शिलाओं का लाना पंजावे का लगाना आदि आरंभ को जिनाज्ञा मानी है, अर्थात् सम्यक्त्व की पुष्टि कहते हैं, और जिन्होंमें केलों के थंभ कटा के वागों में से फूल तुडवाके मंडप मंदिर बनवाने जिनाज्ञामानी है, जिन ग्रंथों के मान ने से श्री वीतराग भाषित परम उत्तम दया क्षमा रूप धर्म्म को हानि पहुंचती है, अर्थात् सत्य

दया धर्म्म का नाश करादिया है उन आचार्यों को पूर्वका सहस्त्रांश भी नहीं आता था तो उन के बनाये ग्रंथ सम सूत्र कैसे माने जायें।

पूर्वपक्षी—तुम निर्युक्तिको मानते होकि नहीं,

उत्तरपक्षी—मानते हैं परन्तु तुम्हारी सी तरह पूर्वोक्त आचार्यों की बनाई निर्युक्तियों के पोथे अनघडित कहानियें सूत्रोंसे अमिलत गपोड़ों से भरे हुये नहीं मानते हैं, यथा उत्तराध्ययन की निर्युक्ति में गौतमऋषि जी सूर्यकी किर्णों को पकड के अष्टा पद पहाडपर चढ़ गये लिखा है आवश्यक जी की निर्युक्ति में सत्यकी सरीखे म [illegible] जी के भक्ता लिखे हैं इत्यादि बहुत कथन [illegible] क्योंकि अब इन पीताम्बरी मूर्ति पूजका स काइ भोला मनुष्य जिसने सूत्रके तुल्य क्रिया करने वाले विद्वान् साधु कीसंगत

न की हो और सूत्रों का व्याख्यान न सुना हों वह प्रश्न पूछे कि जी मूर्ति पूजा किस सूत्र में चली है? तव यह पीतांवरी दंभा धारी वडे उत्साह से उत्तर देते हैं कि उत्तराध्ययन सूत्र में आवश्यक सूत्र में चलीहै, जव कोई विद्वान पूछे कि उत्तराध्ययन और आवश्यक सूत्रों में तो मूर्ति पूजन की गंधि भी नहीं है जैसे सम्यक्त्व शल्यो धार देशी भाषा पृष्ठ १२ वीं के नीचे लिखा है कि श्री उत्तराध्ययन सूत्र के नवम अध्ययन में लिखा है कि नमिनाम ऋषि की माता मदनरेखा ने दीक्षाली तव उस का नाम सुब्रता स्थापन हुआ सो पाठ (तीए वितासिं साहुणीणं, समीवेगहीया दिरका कय,सुव्वय नामा तव संयम, कुण माणी विहरइ) अव उन दंभियों से पूछो कि उक्त

सूत्र में तो यह लेख स्वप्नान्तर भी नहीं है सुम झूठ घोलकर सूत्रोंके नामसे क्यों मूर्खोंको फसाते हो क्योंकि नवमे अध्ययन की ६२ गाथा हैं उसमें यह गाथा है ही नहीं तब कहते हैं हा उत्तराध्ययन आवश्यक सूत्र में तो नहीं है उत्तराध्ययनकी और आवश्यककी निर्युक्तिमें है अथवा कथा (कहानीयों) में है, भला पहिले ही क्यों न कह देते कि पूर्वोक्त निर्युक्ति में है, परन्तु जिनोंने जड पदार्थ में परमेश्वर बुद्धि स्थापन कर रक्खी है उनको तो झूठ ही का कारण है वैसे ही अन्यों के प्रमाण देकर उत्तर न ॥ यथा

कि ... न पछा कि तुम्हारे घर में कितना धन है तो उत्तर दिया कि मेरे जमाइ के मांवसा के साले के घर ५० लाख रुपया है, भला यह

उसकी धनाढ्यता हुई, ऐसे ही जिसका कथन प्रमाणीक सूत्रके मूल में नाम मात्र भी नहो और उसका सूत्र कर्ता के अभिप्राय से संबंध भी नहो उसका कथन टीका निर्युक्ति भाष्य चूरणी में सविस्तार कर धरना यथा इन पूर्वोक्त मूर्ति पूजक स्थिलाचारी आचार्यकृत शत्रुंजय महात्म्य, आदि ग्रंथों में गपौडे लिखे हैं ॥

सेतुज्जे पुडरीओ सिद्धो, मुणि कोडिपंच संज्जुत्तो, चित्तस्स पूणीमा एसो, भणइ तेण पुडरिओ ॥ १ ॥

भावार्थ–ऋषभदेवजी का पुण्डरीक नामे गणधर पांचक्रोड मुनियोंके साथ शत्रुंजय पर्वत ऊपर सिद्धि पाया अर्थात् मोक्ष हुआ चेत शुदि पूर्णिमा के दिन तिस कारण से शत्रुंजय का नाम पुण्डरीक गिरि हुआ, ऐसे ही नमि विनमि

मुनि दो २ क्रोड मुनियों के साथ मुक्त हुए पांच पांडव २० क्रोड मुनियों के साथ मुक्त हुए इत्यादि अब देखिये केसे बडे गपोडे हैं क्योंकि सूत्र समवायांगजी तथा कल्पसूत्रमें तो ऋषभ देवजीके साधुही कुल ८४ हजार लिखे हैं और नेमनाथजी के १८ हजार तो फिर ५ क्रोड और दो २ क्रोड मुनियों (साधुओं) कि फोज शत्रुंजय महात्म्य वाला कहासे लाये लिखता है, यदि एसा कहोगे कि यह पूर्वक प्रमाण तो तीर्थंकर के निर्वाण पर किया हुआ लिखाजाता [illegible] बहुत होते हैं, तो हम उत्तर देंगे कि [illegible] है कि पहिल अधिक होंगे परन्तु [illegible] क्योंकि जिसके पुण्य योग सो १०० मन य की संप्रदाय होय अर्थात् किसी पुरुषके १०० बेटे पोते हुये तो उनमें से

उसके मरते तक पांच सात मरगये जब उसके मरजाने पर परिवार गिना गया कि इसके बेटे पोते कितने हैं तो कहा कि १०० परन्तु ७ तो मर गये ९३वें हैं तो कहाआनन्दजीवणमरण तो सबके ही साथ लग रहा है परन्तु भागवान् था जिसके ९३ वें बेटे पोते मौजूद हैं, वाग बाड़ी खिलरही है,यदि सो १०० में से ९० मरजाते, बाकी मरनेपर १० बचते तो बड़ा अफसोस होता कि देखो कैसा भाग्यहीन था जिसके १०० बेटे पोते हुये और मरते तक सारे खप गये बाकी १० ही रहगयेइसी तरह क्या ऋषभ देव भगवान्के ५० वा ६० क्रोड चेलेथेक्योंकि शत्रुजय महात्म्य ग्रंथ कर्ता एक एक साधु के साथ में पांच२ क्रोड़ मुक्तिहुये लिखता है तो न जाने ऋषभदेवजी के कितने क्रोड़ साधु होंगे

तो क्या ऋषभदेवजी के निर्वाण पर ३० , ४० क्रोड़ भी न होते क्या लाखोंमी नहोते कुल ८४ हजार यस क्रोडों साधु एक समय (एक वक्त) एक ऋषि की सम्प्रदाय भर्तादि १०क्षेत्रोंमें नहीं होसक्तेहैं,यह सब मनमानि आत्मीच प्रयक्तों गप्पें लगाते आये हैं, ऐसे मिथ्या वाक्योंपर मिथ्याती ही श्रधान करते हैं।

हमारे मनमें तो सूत्रानुसार ,निर्युक्तिमानी गई है जो नदी जी तथा अनुयोग द्वार सूत्रमें लिखी है यथा सूत्र ।

सनथ्योखलु पढमो,बीओ निज्जुति मिसओ भा[illegible] ॥ तइओएनिरविसेसो, एसविहीहोइ अणु[illegible] ॥ अर्थ

प्रथम सत्रार्थ कहना द्वितीय निर्युक्तिके साथकहना अर्थात् युक्तिप्रमाणउपमा(दृष्टान्त)

देकर परमार्थ को प्रकट करना तृतीय निर्विशेष अर्थात् भेदानुभेद खोल के सूत्र के साथ अर्थ को मिला देना अर्थात् सूत्रसेअर्थका अविशेष (फरक) नरहे कि सूत्रों में तो कुछऔर भाव है और अर्थ कुछ और किया गया है, एता-दृश विधि से होताहै अनुयोग अर्थात् ज्ञानका आगमन(मतलव का हासल) होना अब आंख खोल के देखो कि सूत्रानुसार यह इसप्रकार निर्युक्ति मानने का अर्थ सिद्ध है कि तुम्हारे मदोनमत्तों की तरहमिथ्या डिंभ के सिद्ध करने के लिये उलटे कल्पित अर्थ रूप गोले गरडाने का, यथा कोई उत्तराध्ययन जी सूत्र वाचने लगे तो प्रथम सूत्रार्थ कह लिया द्वितीय जो निर्युक्तियें नाम से वडे२पोथे वना रक्खेहैं,उन्हें धर के वांचे तीसरे जो निरविशेष अर्थात् टीका

चूर्णी भाष्य आदि ग्रंथों की कोटि निचले उन्हें बांचे इस विधिसे व्याख्यान होयसो ऐसा तो होता नहीं है ताते तुम्हारा हठ मिथ्या है।

पूर्वपक्षी– तुम नदी जी में जो सूत्रों के नाम लिखे हैं उन्हें मानते हो कि नहीं ॥

उत्तरपक्षी–हमतो ४५।७२।८४ सब मानते हैं परन्तु यह पूर्वोक्त अभिनव ग्रंथ सावद्याचार्य्यों कृत नहीं मानते हैं, क्योंकि भद्रबाहु स्वामी लिख गये हैं कि १२ वर्षी काल में बहुत कालिकादि सूत्र विछरजायगे सो उन नदी जो [illegible] म से आदि लेके और बहुत सूत्र विछेद [illegible] दि कोई नदी जो वाले सूत्रों के नाम म [illegible] ग्रंथ है भी तो वह पूर्वोक्त नवीन [illegible] है क्योंकि उनमें सालस मत और फल का नाम लिखा है इस कारण

गणधर कृत सूत्रों की तरह प्रमाणीक नहीं हैं इत्यर्थः ।

हे भ्राता जिस २ सूत्र में से पूर्वपक्षी चेइय शब्द को ग्रहण करके मूर्ति पूजा का पक्ष ग्रहण करते हैं उस २ का मैंने इस ग्रंथ में सूत्र के अनुसार संवन्ध से मिलता हुआ पाठ और अर्थ लिख दिखाया है, इसमें मैंने अपनी ओर से झूठी कुतर्कों का लगाना छति अछतिनिंदा का करना गालियों का देना स्वीकार नहीं किया है क्योंकि मैं झूठ वोलने वाले और गालियें देने वालों को नीच वुद्धि वाला समझती हूं ॥

(२४) पूर्वपक्षी–क्योजी कहीं जैन सूत्रों में मूर्ति पूजा निषेध भी किया है।

उत्तरपक्षी—सूत्रों में तो पूर्वोक्त धर्म्म प्रभृति में मूर्ति पूजा का जिकर ही नहीं परन्तु तुम्हारे माने हुये ग्रथोंमें हो निषेध है परन्तु तुम्हारे वडे सावद्याचार्यो ने तुम्हे मूर्ति पूजा के पक्ष का हठ रूपी नशा पिला रक्खा है जिससे नाचना कूदना ढोलकी छेना खड़काना ही अच्छा लगता है और कुछ भी समझ में नहीं आता है

पूर्वपक्षी—कौन से ग्रंथ में निषेध है हमको भी सुनाओ।

उत्तरपक्षी—लो सुनो प्रथम तो व्यवहारसूत्रकी [illegible] । भद्रबाहु स्वामीकृत सोला स्वप्न के [illegible] पंचम स्वप्न के फल में यथा सूत्र (पंचम [illegible] रूपी संजुत्तोफणह अहि दिठो तस्स फलं तेण दुवालस्स मास परिमाणेदुक्का

लो भविस्सइ तत्थ कालीय सूयपमुहा सूयाचो छिज्ज संति, चेइयं, ठयाचेइ, दव्व आहारिणोमुणी भविस्सइ लोभेन मालारोहण देवल उवहाण उद्य मण जिण विंव पइ ठावण विहीउमाइएहिं वहवेतवपभावापयाइस्संतिअविहेपंथेपडिस्संति,

अर्थ पांचवें स्वप्न में बारां फणी काला सर्प देखा तिस का फल बारां वर्षी दु:काल पड़ेगा जिसमें कालिक सूत्र आदिकमें से और भी बहुत से सूत्र विछेद जांयेंगे तिसके पीछे, चैत्य, स्थापना करवानें लगजांयेंगे द्रव्य ग्रहणहार मुनि होजायेंगे, लोभ करके मूर्ति के गले में माला गेर कर फिर उसका (मोल) करावेंगे, और तप उज्ज मण कराके धन इकट्ठा करेंगे जिन विंव (भगवान की मूर्ति की) प्रतिष्टाकरावेंगेअर्थात् मूर्ति के कान में मंत्र सुना के उसे पूजने योग्य

करेंगे (परन्तु मन्त्र सुनाने वाले को पूजें तो ठीक है क्योंकि मूर्तिको मन्त्र सुनानेवाला मूर्तिकागुरु हुआ और चेतन्यहै,इत्यादि और होम जापससार हेतु पूजा के फल आदि बतावेंगे, उलटे ,पथमें पढ़ेंगे,इत्यादि इसका अधिकविस्तार हम अपनी बनाई ज्ञान दीपिका नाम पोथी के प्रथमभाग में लिख चुके हैं यहां से देख लेना उसमें साफ मूर्ति पूजा निषेधहै अर्थात् मूर्ति पूजाके उपदेशकोंको कुमार्ग गेरने वाले कहा है, २ द्वितीय महा निशीथ ३ तीसरा अध्ययन यथासूत्र ।

नहा किल अम्हे अरिहंताण भगवंताणगंध म [illegible] समचणोवलेवण विचित वस्य वलि [illegible] पूजासक्कारेहिं अणुदियहम, पन्नवणपवु[illegible]वण सित्युप्पणंकरेमि तंचणोणं

तहति गोयमा समणुजाणेज्जा सेभयवं केण अठेणं एवं वुच्चइ जहांणतंचणोणं तहति समणु जाणेज्जागोयमा तयत्था णुसारणं असंयम वाहुल्लेणंच मूल कम्मासवं मूल कम्मासवाउय अझवसाय पण्डुच वहुल्ल सुहासुह कम्मपयडी बंधो सव सावद्य विरियाणंच बयभंगोबयभंगेणच- आणाइ कम्मं, आणाइ कम्मेणंतु उमग्ग गामित्तं उमग्ग गामित्तेणंच सुमग्ग पलायणं उम्मग्ग पवत्तणं सुमग्ग विप्पलोयणेण वह्लइणं महति आसायणा तेण अणंत ससारय हिंडणं एएणअठेणं गोयमाएवं बुच्चइ तंचणोणंतहति समणु जाणेज्जा ॥

अर्थ–तिम निश्चय कोई कहे कि मैं अरिहंत- भगवंत की मूर्ति का गंधिमाला विलेपन धूप दीप आदिक विचित्र, वस्त्र और फल फूल

आदि से पूजा सत्कार आदि करके प्रभावना करूं तीर्थ की उन्नति करता हूं ऐसा कहने को हे गौतम सच नहीं जानना भला नहीं जानना, हे भगवन् किस लिये आप ऐसा फरमाते हो कि उक्त कथनको भला नहीं जानना, हे गौतम उस उक्त अर्थके अनुसार असंयमकी वृद्धि होय मलिन कर्मकी वृद्धि होय शुभाशुभ कर्म प्रकृतियोंका बंध होय, सर्वसावद्यका त्याग रूप जो व्रत है उसका भंग होय, व्रतके भंग होनेसे तीर्थंकरजीकी आज्ञा उलंघन होय आज्ञा उलंघन से उलटे मार्गका गामी होय उलटे मार्ग के जाने से सुमार्गसे [illegible] होय, उलटे मार्ग के जाने से सुमार्ग [illegible] से, महा असातना पड़े तिससे अनंत [illegible] होय इस अर्थ करके गौतम ऐसे कहता हूं कि तुम पूर्वोक्त कथन को सत्य नहीं

जानना भलानहींजाननाइति।अव कहोपाषा-णोपासको मूर्ति पूजा के निषेध करने में इस पाठमें कुछ कसरभीछोड़ी है, जिसकेउपदेशकों को भी अनंतसंसारी कह दियाहै, २ और लो तृतीय विवाहचूलिया सूत्र९वांपाहुडा८वांउद्देश। अनुमान में ऐसा पाठ सुना जाता है॥

कइविहाणं भते मनुस्सलोएपडिमा पण्णत्त गोयमा अनेग विहा पण्णता उसभादिय वद्ध माण परियंते अतीत। अणागए चौवीसं गाणं तित्थयर पडिमा, राय पडिमा, जक्ख पडिमा, भूत पडिमा, जाव धूमकेउपडिमा,जिन पडिमा, णंभंतेवंदमाणे अच्चमाणे हंता गोयमा वदमाणे अच्चमाणे. जइण भतेजिन पडिमाणं वंदमाणे अच्चमाणे, सुय धम्मं चरित धम्मं लभेज्जा गोयमा णोणठेसमठे सेकेणठेणंभंते. एवंवुच्चइ

जिनपढिमाण मदमाणे अमममाणे सुयधम्म चरितधम्मनो लभेज्जा गोयमा पुढवि काय हिंसइ जायतस्स काय हिंसइ आउकम्म बज्जा सतकम्मपगडीउ सढिल वधणय निगड वधणं करिचा जाव चाउरत कतार अणु परि पट्टयति असाया वेयणिज्ज कम्म भुज्जो २वंधई सेतेणठेण गोयमा जावनो लभेज्जा ॥

अर्थ–हेभगवन् मनुष्य लोकमें कितने प्रकार की पड़िमा (मूर्ति) कही है गोतम अनेक प्रकार की कहीं हैं, ऋषभादि महावीर(वर्धमान) पर्यंत २४ तिर्थकरों की, अतीत, अणागत चोवीस [illegible]की पड़िमा, राजाओं की पड़िमा, [illegible] पड़िमा, मृतों की पड़िमा, जाव धूम केतु [illegible] पड़िमा, हे भगवान् जिन पड़िमा की वंदना कर पूजा करे, हां गोतम वंदे पूजे

हे भगवान जिन पडिमा की वंदना पूजा करते हुए श्रुतधर्म्म,चारित्र धर्म की,प्राप्तिकरें, गौतम नहीं,किस कारण हे भगवन्! ऐसा फरमाते हो कि जिनपड़िमाकी बदना पूजा करते हुये श्रुतधर्म,चारित्र धर्म की प्राप्ति नहीं करे, गौतम पृथ्वीकाय आदि छ कायकी हिंसा होती है तिस हिंसा से आयु कर्म वर्ज के सात कर्म्म कीप्रकृत्ति के ढीले बंधनों को करड़े बंधन करें ताते ४ गति रूप संसार में परिभ्रमण करे असाता वेदनी वार२ वांधे तिस अर्थ करके ह गौतम जिन पड़िमाके पूजतेहुए धर्म नही पावे इति इसमें भी मूर्ति पूजा मिथ्यात्व और आरंभ का कारण होनेसे अनंत संसारकाहेतु कहा है।

४ चतुर्थ, और सुनिये जिन बल्लभ सूरिके

शिष्य जिनदत्त सूरिकृत सन्देहदोलावली प्रकरण में गाथा षष्टी सप्तमी :—

गड्डरि पवाहओ जे इह,नयर दीसए बहुजणेहिं,
जिणगिहकारवणाइ,सुत्तविरुद्धो असुद्धोअ ॥६॥

अस्यार्थ —भेड चालमें पडेहुये लोग नगरोंमें देखने में आते है कि (जिनगिह) मंदिर का बनवाना आदि शब्द से फल फूल आदिक से पूजा करनी यह सब सूत्र से विरुद्ध है अर्थात् जिनमत के नियमों से बाहर हैं और ज्ञानवानों के मत में अशुद्ध है ॥ ६ ॥

न्नाहोइद्रव्वधम्मो, अपहाणो अनि-वुई
भम्मो पीउ, महि उपदि सो अगामी
हिं ॥ ॥ द्रव्य धम अर्थात् पूर्वोक्त द्रव्यपूजा सोप्रधान नहीं कस्मात्कारणात् किसलिये कि)

मोक्षसे परांग मुख अणुश्रोत्रगामी संसारमें भ्र-
माणेवालाहै,आश्रवके कारणसे दूजा भाव धर्म
अर्थात्भाव पूजासो शुद्ध मोटा धर्म है,कस्मात्
कारणात् प्रतिश्रोत्र गामी अर्थात् संसारसे वि-
मुख संबर होनेते, अब कहोजी पहाड़ पूजको
जिन बल्लभ सूरीके शिष्यजिनदत्त सूरीने मूर्ति
पूजा के खंडन में कुछ वाकी छोड़ीहै इसमें
हमारा क्या वस है और ऐसे वहुत स्थल हैं
परंतु पोथी के वढ़ाने की इच्छा नहीं क्योंकि
विद्वानोंको तो समस्या (इशारा ही बहुत है)
हे भव्यजीवों पक्षपात का हठ छोड़के अपनी
आत्मा को भव जल में से उभारनेके अधि-
कारी वनो।

(२५) पूर्वपक्षी–भलाजीकई कहते हैंकिमूर्तिपूजा
जैनियोंमें १२ वर्षी काल पीछे चलीहै कई कहते

हैं महावीर स्वामी के वक्त मेंभीथी और कई कहते हैं कि पहिलेसे हा चली आती है, यह कैसे है।

१ उत्तरपक्षी–जो बारा वर्षी कालसे पीछे कहते हैं सोतो प्रमाणों से ठीक मालूम होता है हम अभी ऊपर मूर्ति पूजा निषधार्थमें चार ग्रन्थों का पाठ प्रमाणमें लिख चुके हैं, जिसमें प्रथम स्वप्नाधिकार में १२ वर्षी काल पीछे ही मूर्ति पूजाका आरंभ चलाया लिखा है।

२ और जो महावीर स्वामी जी के समय में कहते हैं सो तो सिद्ध होती नहीं क्योंकि भगवती शतक १२ मा उद्देशा २ में जयन्ति समणो पासका अपनी भौजाई मृगवती से कहती भई कि महावीर

स्वामीजी का नाम गोत्र सुनने से ही महाफल है तो प्रत्यक्ष सेवा भक्ति करने का जो फल है सो क्या वर्णन करुं,औरभी पाठ ऐसे बहुत जगह आते हैं परन्तु ऐसा कहीं नहीं कहा कि महावीर स्वामीजीका मन्दिर मूर्ति पूजने सेही महा फल हैतो प्रत्यक्ष सेवा करनेका फल क्या कहा जाय और सूत्र ज्ञाता धर्म कथा नन्दन मनियार के अध्ययन में भगवान् महाबीर जी कहते भये कि नन्दन मनियार को बहुत काल तक साधकी संगत न हुई इस करके नन्दन की सम्यक्तही न हुई,परन्तु ऐसा नहीं कहाकि वहां मन्दिर न था इस से मूर्ति पूजे बिन सम्यक्त ही न हुई ॥

(३) और जो कहते हैं कि पहिले ही से चली आती है सो इसमें कोई पूर्वोक्त कारणों से

प्रमाण तो है नहीं परन्तु पहले भी मूर्ति पूजा होगी तो आश्चर्य ही क्या है? क्योंकि ऐसे ही जिन साधुओंसे संयम नहीं पला होगा उनपरिग्रह धारियों ने अपना पोल लुकाने को और ज्ञान भंडारा नामसे धन इकट्ठा करने को चापली होगी ॥

(२६) पूर्वपक्षी—क्यों जी साध्वी जी यह जो हमारे आत्माराम जी आनन्द विजय संवेगी ने सम्यक्त्व, शल्योद्धार ग्रन्थ, जैनतत्त्वादर्श आदि ग्रंथ बनाये हैं और जो वल्लभ विजयने [illegible]पिका समीर बनाई है, यह ग्रन्थ कैसे [illegible] प्रश्नों के उत्तर दीये हैं सो यथार्थ है,

उत्तरपक्षी [illegible]नतत्त्वादर्श के सत्यासत्य का

स्वरूप तो कुछतो मैं ज्ञानदीपिका में लिखचुकी हूं और सम्यक्त्वशल्योद्धार और गप्पदीपिका को तुमही वांचके देखलो कि कैसी हैं और कैसे अर्थके अनर्थ हेतुके कुहेतु झूठऔर निंदा औरगालियें अर्थात् ढूढियोंको किसी को दुर्गति पड़नेवाले,किसीको ढेढ चमार मोची मुसलमान इत्यादि वचनों से पुकारा है,हाथ कंगन को आरसी क्या। हांजो स्वपक्षीहैं वह तो फूलते हैं कि आहा देखो कैसी पण्डिताई छुंकिहै परन्तु जो निर्पक्षी सुज्ञजनहैं वह तो साफ कहतेहैंकि यह काम साधुओंके नहीं असाधुओं के हैं और जो प्रश्नोंके उत्तर दिये हैं और जो देते हैं सो ऐसे हैंकि पूर्वकी पूछो तो पश्चिमको दौड़ना कुपत्ती रन्न (लुगाई) की तरह बातको उलटी करके लड़ना। यथा किसीने प्रश्न किया कि तुम्हारे

पीताम्बरीयों के आमनाय वालों में किसी के मस्तकपर गोल टीका होता है किसीके लम्बी सीधीकील(मेप)सी खड़ी बिंदली होतीह इसका कारण क्या? इसका उत्तर दिया कि तेरी माताने और घर किया तेरी बहन किसी के सग भाग गई तेरा नाना काणा है तेरो भूवाकी आंखमें तिलहै तेरे सांढूकी आखमें फोलाहै तेरे मुखपर मक्खो मूतगइ इत्यय अब देखो कैसा यथार्थ उत्तर मिला इसी प्रकार के उत्तर गप्प दीपिका आदियों में समझ लन । अधिक क्या लिखूं,हे श्रानासाधु और श्रावकनाम धराकर कुछ तो न नि ाहनी चाहिये,क्योंकि झूठबोलना और गा। ा ना सदैव बुरा माना है॥

(२७) प्रश्न ारी समझ में ऐसाआता है

कि जो वेद मन्त्रोंको मानते हैं वह पुराणादिकों के गपौड़ों को नहीं मानते हैं और जोपुराणों को मानते हैं वह सब गपौड़ोंको मानते हैं ऐसे ही तुम जैनियों में जो सनातन ढूंडिये जैनी हैं वह मूल सूत्रों कोही मानते हैं पुराणवत् ग्रंथों के गपौड़े नहीं मानते हैं और जो यह पीले कपड़ों वाले जैनी हैं यह पुराणवत् ग्रथों के गपौड़ोंकों मानते हैं क्योंजी ऐसे ही है।

उत्तर-और क्या।

(२८) प्रश्न यह जो पाषाणोपासक आत्मा पंथीये अपने कल्पित ग्रथों में कहीं लिखते हैं कि ढूंढिकमत,लोंके से निकलाहै,जिसको अनु-मान साढेचारसौवर्षहुये हैं, कहींलिखते हैं लव जी से निकला है जिस को अनुमान अढ़ाई सौ वर्ष हुये हैं यह सत्य है कि गप्प है।

उत्तर–गप्प है क्योंकि लोंके ने तो पुराने शास्त्रों का उद्धार किया है नतो नया मत निकला है नकोई नया कल्पित ग्रंथ वनाया है और लवजी स्थिला चारी यतियोंका शिष्य था उसने प्रमाणीकसूत्रों को पढकर स्थिला चारियों का पक्षछोडके शास्त्रोक्त क्रियाकरनी अगीकार की है लवजी ने भी न कोइ नयामत निकाला है न कोई पीताम्बरियों की तरह अपने पोल लकोनेको अर्थात अपनेचाल चलनके अनुकूल नये ग्रंथ वनाये हैं हां यह सवग पीतांवर(लाइा ।।) अनुमान अढाई सौवर्ष सें निकला है।

।। नी आपके उक्त कथनमें कोई प्रमाणहै

। ।। प्रमाण बहुतहैं प्रथम तो आत्मा राम कृत ।।। नति निर्णय भाग २ संवत १९५२ वि० सन् ९५ में अहमदावाद के

युनियन प्रिंटिंग प्रैसमें छपाहै,इस ग्रन्थकी अंतिम पृष्ठमें कर्ताका नाम ऐसे लिखा है तप गच्छा चार्य श्री श्री श्री१००८श्री मद्विजयानंद सूरी विरचते।

इस ग्रन्थकी पृष्ठ३९पंक्ति ५वीं से लेकर कई पंक्तियोंमें यह लेख है कि उपाध्याय श्रीमद्यशो विजयजीने तथा गणिसत्य विजय जीने किसी कारण के वास्ते वस्त्र रंगे हैं तवसे लेकर तप गच्छ के साधु वस्त्र रंगके ओढ़तेहैं परन्तुकोई भी प्रमाणीक साधु यह नहीं मानते हैं कि श्री महावीर स्वामी के शास्त्र में रंगके ही वस्त्र साधुरक्खें और मेरी भी यही श्रद्धा है।

पृष्ठ ९ पंक्ति ५ मी में देखो क्या लिखते हैं कि कुछ हमारे वृद्ध गुरुओं की यह श्रद्धा नहीं

थी कि साधुओं को रंगे हुए वस्त्र ही कल्पे हैं किसी कारण के वास्ते रंगे हैं सो कारणीक वस्त्र कोई वैसा ही पुरुष वूर करेगा फिर

पृष्ठ ३९ पंक्ति २४, में श्रीभगवतके सिद्धांत में एकांत वस्त्र रंगने का निषेध नहीं है कारण यहहै कि एक मैथुन वर्ज्जके किसी भी वस्तु के करणे का निषेध नहीं है–यह कथन श्रीनिशीथ भाष्य में है। तर्क, तुम्हारे इसलेख से तो झूठ बोलना चोरी करना कच्चा पानी पीना आदिक भी कारणमें ग्रहण करनासिद्ध होगया क्योंकि एक मैथुन वर्ज के सब करना लिखते हो और निशीथ भाष्यकाहवाला देतेहो वाह २ धन्य भाग्य धन्य आप ॥

अब विचारणाचाहिये कि इन पूर्वोक्तलेखसे सिद्ध हुआकि श्री महावीर स्वामिके साधुओं

का श्वेतवस्त्र धारणेकामार्ग है । और पीतांबरियों का कल्पित नया मत निकला है क्योंकि यशोविजय जी ने तो इसी लिये विक्रमीसंवत् १७०० के अनुमान में श्वेत वस्त्र त्याग कर रंग दार वस्त्र किये हैं जिस को २५० अढ़ाई सौ वर्षका अनुमान हुआहै और फिर दूर करने (छोड़ने) कोभी लिखाहै परन्तु देखिये इस कारणीक कल्पित (झूठे रंग दार वस्त्रोंके) भेष के धारिणे का पीताम्बरीये कैसा हठ पकड़ रहे हैं और चरचा करते हैं कि महावीर जी के शासन के वही साधु हैं जो पीले वस्त्र धारण करते हैं सो यह मिथ्यावाद है ॥

द्वितीय आत्माराम ने केसरिये (पीले) वस्त्र पहरने का मत निकाला क्योंकि इनके वडे यति लोक कईपीढ़ियें एलियाम्बरी(एलियारंग)वस्त्र

धारी रहते हैं कई काथी(कत्थरग)वस्त्र धारी रहते हैं मनमानापथजो हुआ। औरआत्मारामजीपहिले सनातन पूर्वोक्त ढूंढकमतका श्वेतांबरी साधुथा जब सूत्रोक्तक्रियानासधाई और रेलमेंचढ़नेको और दुशाले घुस्से ओढ़ने को दूर २ देशान्तरों से मोल वार ओषधियों(याकूतियों) की डब्बियें मगाकर खानेको बिलटियां कराकेमालअसबाब रेलों में मगा लन का इत्यादिकोंको दिलचाहा तो ढूंढक मत को छोड गुजरात में जाके संवत् १९३२।३३ में पहिलेतो कथ रगे वस्त्र धारेपीछे पीले करने शुरु किये।

तृतीय वल्लभविजय अपनी बनाई गप्प [illegible]पिका संवत १९६८ की छपीमें पृष्ट १४पंक्ति १ म [illegible]लखता है कि१७० साल अर्थात् विक्रमी संवत्[illegible] क लग भग श्री सत्य गणि विजय

जी और उपाध्याय श्री यशो विजय जीने वहुत क्रिया कठन की और वैराग रंग में रंगे गये तव श्रीसघ उनको संवेगी कहनेलगे इति । बस सिद्ध हुआ कि विक्रमी १७०० के साल में संवेग मत निकला पहिले नही था और इनके बड़ोंको पहिले वैराग भी नही होगा क्योंकि धन विजय चतुर्थ स्तुति निर्णय प्रकाश शकोद्धार पुस्तक संवत् १९४६ में अहमदा वादकीछपी में प्रस्तावना पृष्ट२४ पं०२०मीसे पृष्ठ २५वीं,तक लिखता है कि आत्माराम अपने गुरुओं के विषय में लिखताहै कि पहले परिग्रह धारीमहा व्रत रहितेथे फिर पीछे निग्रंथपना अगीकार किया, परन्तु किसी संयमीके पास चारित्रोपस पत् (फेरकेदिक्षा) लीनी नहीं इससे शास्त्रानुसार इन्हें संयमी कहना योग्यनहीं और आत्मा-

रामजी आनन्दविजय जीका गुरु बूटेरायबुद्धि विजय जी अपनी बनाई मुख पत्ति चर्चा नाम पुस्तकमें अपने गुरुओंको परिग्रहधारी असाधु लिखतेहैं ॥

(२९) प्रश्न—क्योंजी जैनसूत्रों में साधु को वस्त्र रंगने का निषेध है।

उत्तर—हां महावीरस्वामी के शासन में बहु मोल और रंगदार वस्त्र मने है। श्वेत मानो पेत१४ उपगरण आदि मर्यादा सूत्रि चली है निशीथ सूत्रमें जीव रक्षादि कारणात् गन्धि (खुशबो) के लिये आदिक लोद का वस्त्र पर रंग पड़जाय तो ३ धुली जलसहित से उपरंत ता रंगे तो दंड लिखा है और आचारांग जो ३४ म अध्ययन में वस्त्र का रंगना साफ मना है ॥

और इन मूर्ति पूजकों में से ही धन विजय संवेगी अपनीकृत चतुर्थस्तुति निर्णयप्रकाश शंकोद्धारपृ०८१ में लिखता है कि गच्छा चारपयन्नाप्रमुखमां श्रीवीरसासनामां श्वेतमानो पेत वस्त्र को त्याग पीतादि रंगेला वस्त्र धारण करेतेसाधुने गच्छ में बाहर कहिये गाथा, ॥

जत्थय वारडियाणं तत्तडियाणंच तहयपरिभोगो, मुत्तु सुक्किल्ल वत्थं, कामेरा तत्थ गच्छंमि ८९ टीका तथा यत्र गछेवारडियाणंति रक्त वस्त्राणां तत्तडियाणंतिनील पीतादि रंजित वस्त्राणां च परिभोगः क्रियते किं कृत्वे त्याह मुक्तापरित्यज्य किं शुक्ल वस्त्रं यति योगाम्बर मित्यर्थ· तत्र कामेरतिःकामर्यादा न काचिद पीतिद्ध अपि गाथा छंदसी ८९ ।

गणिगोयम अज्जा उविअसेअवत्थविवज्जिउं,

सेवयचितरूवाणि, नसाभ उजाविआहिआ।
११२ अर्थ।

हे गौतम आर्या विश्वेत वस्त्र को छोड रगे वस्त्र पहरे तो उस को जैनमत की आय न कहिये ११२ इत्यर्थ

(२०) प्रश्न-एक बात से तो हम को भी निश्चय हुआ कि सम्यक्त्व शल्योद्धारादि पुस्तक के बनाने वाले मिथ्यावादी हैं, क्योंकि सम्यक्त्व शल्योद्धार देशी भाषा की सम्वत् १९६० की छपी पृष्ठ एक १ में लिखा है कि ढूंढियामत अढाई सौ वर्ष से निकला है और पृष्ठ ९ में लिखा है कि ढूंढिये चर्चा में सदा पराजय होते हैं।

प्रश्न हम ने तो पजाब हाते में एक नामा पति राजा हीरासिंह की सभा में ढूंढिये और

पुजेरे साधुओं की चर्चा देखी है कि सम्वत् १९६१ ज्येष्ठ मास में वल्लभ संवेगी ने राजा साहिब बहादुर नाभा पति के पास जा कर प्रार्थना को कि मेरे छः प्रश्नों का उत्तर ढूंढिये साधुओं से चाहे लिखित से चाहे सभा में दिला दो तब राजा साहिब ने ढूंडिये साधुओं से पुछवाया कि तुम्हारी इच्छा हो तो उत्तर दे दो तब वहां बिहारीलाल आदिक अजीब मतियें ढूंडिये जो अपने २।४ क्षेत्रों के गृहस्थी सेवकोंके आगे मेंमें करते फिरतेहैं वह तो चले गये और पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज ने अपने पोते चेले श्री उदयचन्द जी को आज्ञा दी कि सभा में प्रश्नोत्तर होयेंगे तब राजा की तर्फ से ८ मेंबर मध्यस्थ निश्चय किये गये कि जो यह न्याय करदें सो

ठीक तव अनुमान दिन १५ चर्चा करते रहे ज्येष्ट वदि पचमी को मिम्बरों ने राजा की आज्ञा से गुरुमुखी अक्षरों मे विज्ञापन छपा कर फैसला दिया पृष्ट २ प० २१।२२।२३ में कि हमारी रायमें जो भेष और चिन्ह जैनियों के शिव पुराण में लिखे है वे सब वही है, जो इससमय ढूंडिये साधुरखते है दरअसल इयतदाई चिन्ह रखने ही उचित है, अवदखिये इसमें तो पुजेरों की पराजय हुइ फिर देखो हठवादी अ पनी जडबुद्धि को आत्मानन्द मासिक पत्र में प्रकट करते है कि तुम सच्चे हो तो छ प्रश्नों ं उत्तर छपाके प्रकट करो भलाजी जिनचर्चा ाग छप के प्रकट हो चुका उस का ी भी रहता है अब (बार २) परन ना है और इसमें चढ़मी सिद्ध

हुआ कि शिवपुराण वेदव्यासजीकी बनाई हुई लिखीहै तो वेद व्यासको हुये अनुमान ५हजार वर्ष कहते हैं तो जबभी जैनी ढूडियेही थे संवेग नहीं थे क्योंकि शिवपुराण ज्ञान संहिता अध्याय २१ के श्लोक २।, ३ में लिखाहै ॥

मुण्ड मलिन वस्त्रंच कुडिपात्र समन्वितं
दधानं पुञ्जिकहाले चालयन्ते पदेपदे ॥ २॥

अर्थ-सिरमुण्डित मैले (रजलगेहुये) वस्त्र काठके पात्र हाथमें ओघा पग २ देखकें चलें अर्थात् ओघेसे कीड़ी आदि जतुओं को हटाकर पग रक्खें ॥

वस्त्र युक्तं तथा हस्तं क्षिप्यमाणं सुखे सदा
धर्म्मेति व्याहरन्तंत नमस्कृत्य स्थितं हरे ॥३॥

अर्थ-मुख वस्त्रका (मुखपत्ती) करके ढकतेहुए सदा मुखको तथा किसी कारण मुखपत्ती को

अलग करेंतो हाथ मुंहकेअगाड़ी देलेंपरंतुउघाड़े मुखन रहें (नयोले) और वल्लभविजयनाभेवाले ६प्रश्नोंमें १म,प्रश्न में लिखता हैकि दिन रात मुंह बन्धा रहे वा खुला रहे इति इससेयहसिद्ध हुआ है कि इसके शास्त्र में दिन रात दोनोंमें से एक मे मुंह बांधना लिखा होगा परन्तु मुंह बांधने नहीं महुर्तमात्र भी क्योंकि धन विजय पूर्वोक्त चतुर्थ स्तुति निर्णय शकोद्धारी प्रथम परिच्छेद पृष्ट४ पंक्ति७मी में लिखता है कि आतमा रामजी श्रीसे.रठ दशाने अनार्य क ह्याने तथा मुखपत्ती व्याख्यान वेलाए बांधवी ...रे (अच्छीहै) पण कारण थी बांधता नथी ...नां वचन बोली अभीनिवेश मिथ्या न... ...र भोला लोकोने फंदमा नाखया नापथ... ...पृष्ट५ पंक्ति नीचे २में सपत्

१२४० सालमा आत्मारामजीए अहमदाबाद समाचार छापामां व्याख्यानके अवसरे मोहपति बांधवी हम अच्छि जानतेहैं पर किसी कारण से नहीं बांधते हैं एहवोछराके विद्याशालानो वेठक नाश्रावकोए आत्मा रामजी ने पूछा साहेब ? आप मोहपटि बांधवी रूडी जानोछो तो बांधता के मन थी त्यारे आत्माजीए तेने पोताना रागी करवाने कह्योके हम इहां से- विहार करके पीछे बांधेंगे पणहजु सुधी बांधता न थी ते कारणथी आत्माराम जी नुं लिखवो जुदोने बोलवो जुदो अने चालवो जुदो अमने भासन थयो इत्यादि। अबदेखोजैनसाधुका उस वक्त अर्थात् वेदव्यासके समयमेंभी यही भेष- था ओघा, पात्रा, मुखपट्टी मैलेवस्त्र परन्तु पीलेवस्त्र हाथमें लाठा उघाढ़ेमुख ऐसे जैनके

साधु व्यासजीने भी नहीं कहेतो फिरसिद्ध हुआ कि ढूंढक मत प्राचीन है २५० वर्षसे निकला मिथ्या वादी द्वेषसे कहते हैं ॥

उत्तर-तुम्ही समझ लो ॥

(३१) प्रश्न-क्योंजी यह निंदारूप झूठ और गालियें दुवचनादियां से सहित पूर्वोक्त पुस्तक इस्तहार बनाते हैं छपाते हैं उन्हें पापतो जरूर लगता होगा।

उत्तर-अवश्य लगताहै क्योंकि बनाने वाला जब झूठ और निन्दाके लिखनेका अधिकारी [illegible] है तब उसका अन्तःकरण मलीन होनेसे पा[illegible]गता है और जो उनके पक्षी उसे बांचते हैं तब [illegible] की स्तुति करते हैंकि आछा क्या

अच्छा लिखता है तब वहभी पापके अधिकारी होते हैं और जो दूसरे पक्षवाला वांचे तो वह वांचतेही एक वारतो क्रोधमें भरके योंही कहने लगताहै कि हमभी ऐसीही निन्दा रूप किताव छपायेंगे फिर अपने साधु स्वभाव पर आकर ऐसा विचारे कि जितना समय ऐसी निरर्थक निन्दारूप आत्माको मलीन करनेवाली पुस्तक बनानेमें व्यय करेंगे उतना समय तत्वके विचार व समाधिमें लगायेंगे जिससे पवित्रात्मा हो, इससे मौनही श्रेष्ट है ॥ यथा दोहा-

मूर्खका मुख वम्ब है बोले वचन भुजंग ।
ताकी दारू मौनहै, विषे न व्यापे अंग ॥१॥

यह समझकर न लिखे परन्तु बांचतेहीक्रोध आनेसेभीतोकर्मबन्धे इसलिये पूर्वोक्त पुस्तक वनानेवाला आप डूबताहै और दूसरोंके डुवाने

का कारण होताहै इसलिये तुम्हारे कहनेमेंकोई संदेह नहीं परन्तु मेरी तो सब भाइयों से यह प्रार्थनाहै कि न तो पूर्वोक्त पुस्तकें छापो और न छपाओ क्योंकि जैनकी निंदा करनेको तो अन्य मतावलंबीही बहुतहैं फिर तुम जैनी ही परस्पर निन्दा क्यों करते करातेहो शोक है आपसकी फूटपर क्या तुम नहीं जानते कि यह जैनधर्म क्षांति दान्ति शान्ति रूप अत्युत्तम है, अनेक जन्मोंके पुण्योदयसे हमको मिला है तो इससे कुछ तप संयमका लाभउठायें औरमूठ कपटको छोडें यद्यपि कलियुगमें सत्यकी हानीहैं तथापि इतना तो चाहिये कि पक्षका हठ और कपट व। स्वराईको घटमेंसेहटाकर विधि पूर्वक धर्म प्रीतिसे परस्परमिलके शास्त्रार्थ किया करें धर्म समाधिका लाभ उठाया करें मनुष्य जन्मका

यहही फलहै कि सत्यासत्यका निर्णयकरें परन्तु लड़ाईझगडे न करने चाहियें। अपितुझूठबोलना और गालियें देनी तो सबको आती हैं, परन्तु धर्मात्माओंका यह काम नहीं बस सब मतों का सार तो यहहैकि अशुभ कर्मोंको तजो औरशुभ कर्मोंको ग्रहण करो अर्थात् हिंसा मिथ्या चोरी मद मांस अभक्षादिका त्याग अवश्य करो और दया दान सत्य शीलादि अवश्य ग्रहणकरो, काम क्रोध लोभ मोह अहंकार अज्ञानको घटायाकरो यत्न विवेकज्ञान क्षमा संयमको वढायाकरो अपने २ धर्मसंबन्धीनियमोंपरदृढ़रहोइत्यादाशुभम्

यदि इस पुस्तकके बनाने में जानते अजानते सूत्र कर्ताओंकेअभिप्राय से विपरीत लिखागया होतो (मिच्छामिदुक्कडम्) ॥

॥ ॐनमः सिद्धेभ्यः ॥

जैनधर्म के नियम ॥

सनातन सत्य जैनधर्मोपदेशिका

बालब्रह्मचारिणीजैनाचार्य्याजी ।

श्रीमती श्री१००८ महासती

श्रीपार्वतीजी, विरचित ।

जिस को

लालामेहरचन्द्र,लक्ष्मणदासश्रावक

सैद मिट्ठाबाजार लाहौर ने छपवाया।

सं० १९६२ वि० ।

पञ्जाब एकोनामीकल यन्त्रालय में प्रिण्टर

लालालालमणि जैनीके अधिकार से छपा ।

ठिकाना पुस्तक मिलनेका

मेहरचंद्र लक्ष्मणदास श्रावक

सैदमिट्ठा बाजार,

लाहौर।

॥ ॐ श्रीवीतरागायनमः ॥

जैनधर्म के नियम।

१—परमेश्वर के विषय में।

१—परमेश्वरको अनादि मानते हैं अर्थात् सिद्धस्वरूप, सच्चिदानन्द, अजर, अमर, निराकार, निष्कलङ्क, निष्प्रयोजन, परमपवित्र सर्वज्ञ, अनन्तशक्तिमान् सदासर्वानन्द रूप परमात्मा को अनादि मानते हैं॥

२—जीवों के विषय में।

२—जीवोंको अनादि मानते हैं अर्थात् पुण्य पाप रूप कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता संसारी

अनन्त जीवोंको जिनका चेतना लक्षण है अ नादि मानते हैं॥

३—जगत के विषय में।

३—जड परमाणुओं के समूह रूप लोक (जगत्) को अनादि मानते हैं अर्थात पृथिवी, पानी, अग्नि, वायु, चन्द्र सूर्यादि पुद्गलों के स्वभावसे समूह रूप जगत् १ काल (समय) २ स्वभाव (जड में जड़ता चेतनमें चेतन्यता) ३ आकाश (सर्व पदार्थों का स्थान) ४ इन को प्रवाह रूप अकृत्रिम (विना किसी के बनाये) अनादि मानते हैं॥

४—अवतार।

धर्मावतार ऋषीश्वर वीतराग जिनदेवको जैनधर्मका बनानेवाला मानते हैं अर्थात् मि

धातु,का अर्थ जय, है जिसको नक् प्रत्यय होने से जिन, शब्द सिद्ध होता है अर्थात् राग द्वेष काम क्रोधादि शत्रुओं को जीत के जिनदेव कहाये,जिनस्यायं,जैनः अर्थात् जिनेश्वर देवका कहा हुआ जोयह धर्महै उसे जैनधर्म कहते हैं

५--जैनी।

५–जैनी मुक्तिके साधनों में यत्न करने वाले को मानते हैं। अर्थात् उक्त जिनेश्वर देव के कहे हुए जैनधर्म में रहे हुए अर्थात् जैनधर्म के अनुयायिओं को जैनी कहते हैं॥

६--मुक्ति का स्वरूप।

६–मुक्ति, कर्म बन्ध से अबन्ध होजाने अर्थात् जन्ममरण से रहित हो परमात्म पदको प्राप्त कर सर्वज्ञता , सदैव सर्वानन्दमें रमन

रहने को मानते हैं अर्थात मुक्ति के साधक धन और कामनीके त्यागी सत्गुरुओंकी सगत करके शास्त्र द्वारा जड चेतन का स्वरूप सुन कर सांसारिक पदार्थो को अनित्य (झूटे) जान कर उदासीन होकर सत्य सन्तोप दया क्षानादि सुमार्ग में इच्छा रहित चल कर काम क्रोधादि अपगुणोंके अभाव होने पर आत्म ज्ञानमें लीन होकर सर्वारम्भ परित्यागी अर्थात् हिंसा मिथ्यादि के त्याग के प्रयोग से नये कर्म पैदा न करे और पुर इन (पहिले किये हुए) कर्मो का पूर्वाक्त जप तप ब्रह्मचर्यादि के प्रयोग से नाश करके कर्मोसे अलग होजाना अर्थात् जन्म ... मे रहित होकर परमपवित्र सच्चिदानन्द ... को प्राप्त हो ज्ञानस्वरूप सदैव पर मान ... रहनेको मोक्ष मानते हैं ॥

७--साधुओं के चिन्ह और धर्म

७-पञ्चयम (पांचमहाव्रत के) पालनेवालों कोसाधु कहतेहैं अर्थात् श्वेतवस्त्र, मुखवस्त्रका मुख पर बांधना, एक ऊन आदि का गुच्छा (रजोहरण) जीव रक्षा के लिये हाथ में रखना, काष्ठ पात्र में आर्य गृहस्थियों के द्वारसे निर्दोष भिक्षा ला के आहार करना। पूर्वोक्त ५ पञ्चाश्रव हिंसा १ मिथ्या २ चोरी ३ मैथुन ४ ममत्व ५ इन का त्यागन और अहिंसा सत्यमस्तेय ब्रह्म चर्याऽपरिग्रहयमाः इन उक्त (पञ्च महाव्रतोंका धारण करना अर्थात् दया १ सत्य २ दत्त ३ ब्रह्म चर्य ४ निर्ममत्व ५ दया, (जीव रक्षा) अर्थात स्थावरादि कीटी से कुञ्जर पर्यन्त सर्व जीवों की रक्षा रूप धर्ममें यत्न का करना १ सत्य (सच्च बोलना) २ दत्त (गृहस्थियों का दिया

हुआ अन्न पानी वस्त्रादि) निर्दोष पदार्थ का लेना ३ ब्रह्मचर्य (हमेशा यती रहना) अपितु स्त्री को हाथ तक भी न लगाना जिस मकान में स्त्री रहती हो उस मकान में भी न रहना। ऐसे ही साध्वी को पुरुष के पक्षमें समझ लना ४ निर्ममत्व (कौडी पैसा आदिक धन) धातु का किंचित् भी न रखना ५ रात्रि भोजन का त्याग अर्थात् रात्रि में न खाना न पीना रात्रि के समय में अन्न पानी आदिक खान पान के पदार्थ का संचय भी न करना (न रखना) और नंगे पांव भूमि शय्या, तथा काष्ठ शय्या का करना फलफूल आदिक और सांसारिक विषय व्यवहारों से अलग रहना, पञ्च परमेष्टी का [illegible] करना धर्मशास्त्रोंके अनुसार पूर्वोक्तसत्य मार [illegible] गतिको ढूंढकर परोपकार के लिये

सत्योपदेश यथा वुद्धि करते हुये देशांतरों में विचरते रहना एक जगह डेरा वना के मुकाम का न करना,ऐसी वृत्तिवालोंको साधु मानते हैं

८—श्रावक(शास्त्र सुननेवाले) गृहस्थियों का धर्म ।

८—श्रावक पूर्वोक्त सर्वज्ञ भाषित सूत्रानुसार सम्यग् दृष्टिमें दृढ़ होकर धर्म मर्यादामें चलनेवालों को मानते है अर्थात् प्रातःकाल में परमेश्वर का जाप रूप पाठ करना अभयदान सुपात्रदान का देना सायंकालादिमें सामायिक का करना,झूठका न वोलना, कम न तोलना, झूठी गवाही का न देना,चोरीका न करना, पर स्त्री का गमन न करना, स्त्रियोंने परपुरुष को गमन न करना अर्थात् अपने पतिके अतिरिक्त

सवपुरुषोंको पिता भ्रधु के तुल्य समझना (घूत) जूएका न खेलना, मासका न खाना, शरायका न पीना, शिकार (जीवघात) का न करना, इतना ही नहीं है वरच मांस खाने, शराब पीनेवाले, शिकार (जीव घात) करने वाले को जातिमें भी न रखना अर्थात उसके सगाई (कन्यादान) नहीं करना, उसके साथ खानपानादि व्यवहार नहीं करना, खोटा वाणिज्य न करना अर्थात् हाड, चाम, जहर, शस्त्र आदिक का न बेचना और कसाई आदिक हिंसकों को व्याज पे दाम तक भी न देना क्योंकि उनकी दुष्ट कमाई का धन लेना अधम है॥

८--परोपकार।

...रसत्य विद्या(शास्त्रविद्या) सीखने सि... न जिनन्द्र देव भाषित सत्य

शास्त्रोक्त जड़ चेतन के विचार से बुद्धि को निर्मल करने में जीव रक्षा सत्य भाषणादि धर्म में उद्यम करने को कहते हैं ॥ यथा :-

दोहा-गुणवंतोंकी वदना,अवगुण देख मध्यस्थ।
दुखी देख करुणाकरे,मैत्रीभाव समस्त १

अर्थ-पूर्वोक्त गुणोंवाले साधु वा श्रावकों को नमस्कार करे और गुण रहित से मध्यस्थभाव रहे अर्थात् उस पर राग द्वेष न करे २ दुखियों को देख के करुणा (दया) करे अर्थात् अपना कल्प धर्म रख के यथा शक्ति उनका दुःख निवारन करे ३ मैत्री भाव सबसे रक्खे अर्थात् सर्व जीवों से प्रियाचरण करे किसी का बुरा चिंते नहीं ॥ ९ ॥

१०--यात्रा धर्म।

१०-यात्रा चतुर्विध संघ तीर्थ अर्थात् (चार

तीर्थो) का मिल के धर्म विचार का करना उसे यात्रा मानते हैं अर्थात् पूर्वोक्त साधु गुणों का धारक पुरुष साधु १ तैसे ही पूर्वोक्त साधु गुणोंकी धारिका स्त्री साध्वी २ पूर्वोक्त श्रावक गुणोंका धारक पुरुष श्रावक ३ पूर्वोक्त श्रावक गुणों की धारिका स्त्री श्राविका ४ इनको चतुर्विध संघ तीर्थ कहते हैं इनका परस्पर धर्म प्रीति से मिल कर धर्म का निश्चय करना उसे यात्रा कहते हैं और धर्म के निश्चय करने के लिये प्रश्नोत्तर कर के धर्म रूपी लाभ उठाने वाले (सत्य सन्तोष हासिल करन वालों) को यात्री कहते हैं अर्थात् जिम देश काल में जिस पुरुष को सत् सगतादि करके आत्मज्ञान का [illegible] हो वह तीर्थ । यथा चाणक्य नीति दर्पणे [illegible] २ श्लोक ८ में —

साधूनां दर्शनं पुण्यं, तीर्थं भूताहि साधवः ।
कालेन फलते तीर्थं, सद्यः साधुसमागमः ॥

अर्थ–साधु का दर्शन ही सुकृत है साधु ही तीर्थ रूप है तीर्थ तो कभी फल देगा साधुओं का संग शीघ्रही फलदायक है। १। और जो धर्म सभा में धर्म सुन ने को अधिकारी आवे वह यात्री। २। और जो धर्मप्रीति और धर्म का बधाना अर्थात् आश्रव का घटाना सम्बर का बधाना (विषयानन्द को घटाना आत्मानन्द को बधाना) वह यात्रा। ३। इन पूर्वोक्त सर्व का सिद्धान्त (सार) मुक्ति है अर्थात् सर्व प्रकार शारीरी मानसी दुःख से छूट कर सदैव सर्वज्ञता आत्मा आनन्द में रमता रहे॥

॥ इति दशनियमः ॥ शुभम् ॥

ॐश्रीवीतरागायनम

ज्ञानदीपिका (जैनोद्योत) ग्रंथ

"सत्यधर्मोपदेशिका-बालब्रह्मचारिणी
श्रीमतीपार्वती सतीजी विरचिता"।

द्वितीया वृत्ति।

विज्ञापन।

हमारे प्यारे जैनी भाइयोंको प्रकट हो कि जैनतत्त्वादर्श ग्रन्थ जोकि महाराज श्रीआत्मा रामसाधुजीने बनाया है उसके पढ़ने वासुनने से कई एक भाइयोंकी धर्म विषयक श्रद्धा में [illegible] आगया है इस हेतु से श्रीमती पार्वती जी [illegible] ब्रह्मचारिणीसतीनेलोगोंके उपकार

रार्थ, **ज्ञानदीपिका** ग्रन्थ ऐसीसरलभाषा में बनाया है (जिस में संक्षेपमात्र सत्यासत्य और धर्माधर्म का निरूपणकिया है) कि अल्प बुद्धिजन भी उसको देखकर ठीक ठीक सत्य मार्गपर आजावें ॥ इस ग्रंथ में सूत्रोंके प्रमाण भी दिये गये हैं और श्रावकके कर्मों और अ-कर्मोका तथा सामायिक विधिकाप्रमाणसहित निरूपण किया हुआ है, इसलिये निश्चय है कि आप लोग पक्षपातको छोड़ तत्त्व दृष्टि से इस ग्रन्थको विचारकर भवसागर के पार उतर नेके लिये धर्मरूपी नौकाके ऊपर आरूढ हो कर इस दुःख बहुल जन्मको सफल करेंगे ॥

यह पुस्तक बहुत उत्तम अक्षरोंमें और मोटे कागज़पर छप कर त्यार होगया है विलायती

कपड़े की जिल्द त्यार हुई है और इस पुस्तक का दाम ॥। रु० और महसूल २ आना है। जो महाशय इस पुस्तकको खरीदना चाहें वे अपना नाम, मुकाम डाकखाना, और जिला बहुत शीघ्र नीचे लिखे पते पर भेज देवें 'पत्र' पहुंचनेपर तत्काल पुस्तक भेज दिया जावेगा।

पुस्तक मिलने का ठिकाना –

मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास

संस्कृत पुस्तकालय सैद मिट्ठाबाजार।

लाहौर पञ्जाब।

प्रशंसापत्र ।

OPINIONS OF THE WELL-KNOWN PUNDITS.

नोचित्रं यदि पूरुषा निजधिया ग्रन्थं विदध्युर्नवं यस्माज्जन्मत एव शास्त्रसरणौ तेषां गतिर्विद्यते ॥ आश्चर्य्यं खलु तत्स्त्रियाऽप्यरचि यल्लोके नवं पुस्तकं यस्मात्सर्गत एव मन्दमतयस्ताःसंसृतौ विश्रुता ॥ १ ॥

अर्थ--अगर पुरुष अपनी अकल से कोई नया ग्रंथ बनाए तो कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि उन की जन्म ही से लेकर शास्त्र की सड़क पर सैर हो रही है । आश्चर्य्य तो यह है कि स्त्री होकर कोई नया पुस्तक बना दे क्योंकि स्त्रियों को संसार में कम अकल ख्याल करते हैं । १ ।

मूर्त्यर्च्चा विहिता नवेति मतयो रन्त्यस्य

निर्णायकं वादिप्रत्यर्थिवादिविवादनियत प्रश्नोत्त
राल‌ङ्कृतम् ॥ युक्तयुक्ति प्रविभूषितं प्रति पदं
सूत्रप्रमाणान्वितं पार्थ स्तुत्य मिदं सुपुस्तक
मिदं श्रीपार्वती निर्मितम् ॥ २ ॥

अर्थ—श्री पार्वती जी का बनाया हुआ यह पुस्तक मेरी राय में बहुत तारीफ के लायक है क्योंकि मूर्ति पूजा करनी चाहिये या नहीं करनी चाहिये इन दोनों मतों में से श्रीवीर के मत को यानि नहीं करनी चाहिये इस को निर्णय कर रहा है और वादि प्रतिवादियों के वाद में जो प्रश्नो त्तर होते हैं उन प्रश्नोत्तरों से भूषित है और युक्तियें और प्रत्युक्तियां भी जिस में बहुत अच्छी हैं और हर एक जगह हर एक विषय पर सूत्रों के प्रमाण जिस में दिये गये हैं ॥

आबालमा वार्द्धक मेक रूपं
दृष्टं मन शान्त रस तदीयम् ॥
अभाषि शिष्येण न किंचिदन्यदस्या
मुखाब्जेन मतोपदेशात्

अर्थ—पार्वतीदेवी जो यह हैं जिन के मन को बालकावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक हर किसी ने शान्त रसमय मालूम किया है और जिन के मुख से जैन मतोपदेश के सिवाय शिष्यों ने भी आजतक कभी दूसरा शब्द नही सुना।

वसता लवपुर मध्ये छात्रान् शास्त्रं प्रवेशयता ॥
संमति रत्र सुविहिता दुर्गादत्तेन सुविलोक्य ॥

पं०दुर्गादत्त शास्त्री अध्यापक ओ०का०
लाहौर।

I have seen the book entitled "Satayartha Chandrodaya Jain" written by Srimati Sattee Parbatiji. It is against *murtipujan*, and the authoress proves by quotations from the Jain Sutras that *murtipujan* is not dictated in the *said Sutras* The book is in a very good style and the arguments are well arranged which show that the writer has done justice to the subject according to the Jain scriptures.

P TULSI RAM, B A,

8th May 1905 LAHORE.

॥ श्री ॥

विज्ञानरश्मिचय रञ्जित पक्षपाता पतित सहृदय हृदयाब्जमुकुल विस्फार लब्धयथार्थं नाम, मिथ्यातिमिर नाशकमेतत् पुस्तकञ्जैन धर्मभाषानिबन्धललाम सारगर्भितञ्च उप क्रमोपसंहार पूर्वक सर्वम् मयावलोकितम् ।

इति प्रमाणीकरोति ।

लाहौर डी०ए०वी० कालेज

प्रोफेसर ।

पण्डित राधाप्रसाद शर्मा शास्त्री ।

यन्निर्मात्री

सुगृहीतनाम धेयासनी बालब्रह्मचारिणी श्रीमती पार्वतीदेवी, सम्भाव्यतेच,

यत्–

मूर्तिपूजामसन्वानामन्येषामपिगुणगृह्याणा मेतत् पश्यताम्मनोह्लादो भवेदिति ॥

ह०पण्डित राधाप्रसाद शास्त्री ।

ॐ

दुवैया छन्द ॥

अहो विचित्र न मोको भासे पुरुष रचें जो ग्रंथ नवीन । अबला रचें ग्रन्थ जा अद्भुत यही अचम्भो हम ने कीन ॥ प्राकृत भाषा का जो हारद हिन्दी मांहि दिखाओ आज । तांते धन्य-वाद का भांजन है अबला सबहन सिर ताज १ निज २ धर्म न जाने सगले पुरुषन में ऐसी है चाल । तो किम अबला लखे धर्म निज याही ते पड़ता जंजाल ॥ विद्याबल से पाया यो-

पित ने लख्यो धर्म निज पुन आधार। लोगन हित पथ रच्यो ग्रन्थ यह यथा सेतु रच नृप उपकार ॥ ३ ॥ दयानन्द ने एस लिखा था सत्यार्थ प्रकाशे ठीक। मूर्तिपूजा के आरम्भक हैं जैनी या जग में नीक ॥ पर अवलोकन कर यह पुस्तक संशय सकल भये अब छीन। ताते धन्यवाद तुहि देवी तू पावती यथार्थ चीन। ४। साधारण अबला में ऐसी होइ न कथहू उत्तम बुद्ध। ताते यह अवतार पछानो कह शिवनाथ हृदय धर शुद्ध ॥ बार २ हम ईश्वर से अब यह मांगे हैं धर कर जोर। चिरंजीवि रह पर्यंत तनया रचे ग्रंथ सिद्धान्त निचे र। ५।

दोहा-पण्डित योगीनाथ शिव।
लिखी सम्मति आप ॥

लवपुर मांहि निवास जिह।
शंकर के प्रताप ॥ ५ ॥

अलौकिक बुद्धिमती परोपकारिणी सकल शास्त्रनिष्णाता जैनमत पथ प्रदर्शिका ब्रह्मचारिणी महोपदेशिका श्रीमती श्रीपार्वती द्वारा रचित तथा स्ववंश दिवाकर सद्‌गुणाकर जैन धर्मप्रवर्तकपरोपकारनिरत संस्कृत विद्यानुरागी देशहितैषी लाला मेहरचन्द्रलक्ष्मणदास द्वारा मुद्रापित सत्यार्थचन्द्रोदय नामक ग्रन्थ का मैं ने आद्योपान्त अवलोकन किया है इसमें ग्रन्थ कर्त्रीने बड़ी सुगमता से जैनशास्त्रानुसार अनेक दुर्भेद्य प्रमाणों से मूर्तिपूजन का खण्डन करके जैनमतानुयायियों के लिए जैनधर्मका प्रकाश किया है, जैनधर्मानुरागियों से प्रार्थना है कि

अन्वित नाम युक्त सत्यार्थचन्द्रोदय को पढ़कर स्वजन्म सफल करें और प्रकाशक (मुद्रापक) के उत्साह को बढ़ाएं।

पार्वती रचितो ग्रन्थो जैन मत प्रदर्शक ।
प्रीतयेस्तु सतां नित्यं सत्यार्थ चन्द्र सूचक ॥

२१।५।१८ ई } गोस्वामि रामरग शास्त्री मुख्य सस्कृता
ध्यापक राजकीय पाठशाला लाहौर।

सत्यार्थ चन्द्रोदयजैन।

इस पुस्तक में यह दिखलाया है कि मूर्ति पूजा जैनसिद्धान्त के विरुद्ध है। युक्तियें सब की समझ में आने वाली हैं और उत्तम हैं दृष्टान्तों से जगह २ समझाया गया है। और फिर जैनधर्म के सूत्रों से भी इस सिद्धान्त को

पुष्ट किया है जैनधर्म वालों के लिये यह ग्रंथ अवश्य उपकारी है॥ * * * *

राजाराम पण्डित
सम्पादक आर्यग्रन्थावली,
लाहौर॥

ਇਸ ਪੁਸਤਕ ਨੂੰ ਜਦ ਮੈਂ ਡਿੱਠਾ ਪੜ੍ਹੀ ਹਕੀਕਤ ਸਾਰੀ।
ਜੈਨ ਧਰਮ ਦੀ ਹੈ ਇਹ ਪੂੰਜੀ ਹਿੰਦੀ ਵਿੱਚ ਨਿਆਰੀ॥
ਬਹੁਤੇ ਪੁਸਤਕ ਡਿੱਠੇ ਭਾਲੇ ਰਚੇ ਮਨੁੱਖਾਂ ਜੋਈ।
ਪਰ ਨਾਰੀ ਦੀ ਰਚਨਾ ਚੰਗੀ ਸੁਨੀ ਨ ਡਿੱਠੀ ਕੋਈ॥੧॥
ਸ਼ਾਬਾ ਤੈ ਨੂੰ ਰਚਨੇ ਵਾਲੀ ਚੰਗਾ ਰਾਹ ਦਿਖਾਯਾ।
ਜੈਨ ਧਰਮ ਦਾ ਝਗੜਾ ਸਾਰਾ ਇਸ ਵਿੱਚ ਚਾਇਮੁਕਾਯਾ।
ਪੂਜ ਢੂੰਢੀਆਂ ਦਾ ਜੋ ਮੱਤਲਬ ਮੂਰਤ ਪੂਜਾ ਵਾਲਾ।
ਸ਼ਾਬ ਹਵਾਲਾ ਦੇ ਕੇ ਸਾਰਾ ਦੱਸਿਆ ਰਾਹ ਸੁਖਾਲਾ॥੨॥
ਜੋ ੨ ਪੜ੍ਹੇ ਭਰਮ ਸਬ ਖੋਵੇ ਜਾਨੇ ਧਰਮ ਪੁਰਾਨਾ।
ਵਾਹ ਵਾ ਆਖਨ ਤੋ ਕੀ ਆਖਾਂ ਹੋਰ ਨ ਮੈ ਕੁਝ ਜਾਨਾ॥

ਮੈਂ ਹੁਣ ਹੋਰ ਨਹੀਂ ਕੁਝ ਕਹਿੰਦਾ ਦੇਵਾ ਲੱਖ ਅਸੀਸਾ।
ਪਰਮੇਸਰ ਖੁਸ ਰੱਖੇ ਤੈਨੂੰ ਲੱਖ ਕਰੋੜ ਬਰੀਸਾ ॥੩॥
ਜੇਕਰ ਏਹੋ ਜੇਹੇ ਪੁਸਤਕ ਰਚਨ ਔਰਤਾ ਸਾਰੀ।
ਤਾਂ ਫਿਰ ਮਰਦਾ ਨੂੰ ਇਹ ਵਾਸਤੇ ਖਿਦਮਤ ਪਤਨੀਕਰਾਰੀ
ਵਿੱਚ ਲਾਹੌਰ ਦੇ ਮੈਂ ਇਹ ਲਿਖਿਆ ਅਪਨਾ ਮਤਲਬ ਸਾਰਾ
ਜਸਵੰਤਨਾਥ ਜੁਗੀਸਰ ਮੈ ਨੂੰ ਆਖਨ ਲੋਕ ਪੁਕਾਰਾ॥੪॥

स्थानाभाव से बाकी समस्या पत्र छोड़दिये गये हैं ॥

मेहरचन्द्र

लक्ष्मण दास,

सैदमिट्ठा बाजार लाहौर ॥

शुद्धि पत्र ॥

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१३	साहत	सहित
२	१४	जब	जिस
३	५	पाषाणादिक	पाषाणादिका
५	२	कत	तक
८	१	ह	है
८	७	स्थम्भादिक	स्तम्भादिक
८	१२	पाषाणादि	पाषाणादिक
१३	४	पूण	पूर्ण
१४	६	च्त्री	चत्रिय
१४	१०	सत्यवादि	सत्यवादी
१५	५	स्थम्भादि	स्तम्भादिक
१६	४	गुण	गुणों
१८	२	निच्चेप	निच्चेपे
१८	६	सम्यक्त्वशल्याद्धार	सम्यक्त्वशल्योद्धार
१८	११	सा	सो

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०	५	वाचिन्थो	वाचिन्था
२०	८	वा २	वो १
२	८	निर्विमव	निर्विमेव
२	११	निचेय	निचेये
२१	११	सवत	सम्वत
२२	१४	मी	में
[illegible]	४	विधार्यी	विधार्यों
२५	१	तें	तैं
२६	९	मयी	मय
२६	१	भविष्यतादि	भविष्यदादि
२७	५	हुये	हुए
१	१	व्यारिव	चौहरिव
१६	४	पोवादो	पिवादो
१८	१३	हुये	हुए
१८	६	पिचमावी	पिचमावा
३२	१३	सिवा	सिपाव
३६	५	सिर	सिर

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५५	१२	नर्हो	नहीं
५५	१४	अजर	अज
५५	१५	नराकार	निराकार
६०	११	मंदर	मंदिर
६१	८	यावद्	यावत्
६२	२	जरूत	जरूरत
६४	२	यावद्काल	यावत्काल
६४	२	तावद् काल	तावत् काल
६८	४	चैतन	चेतन
६९	७	प्रश्न	(१२) प्रश्न
७०	११	हं	हैं
७०	१४	िक	कि
७१	१	ह	हैं
७१	११	प्रमाणीक	प्रामाणिक
७२	४	प्रमाणीक	प्रामाणिक
७२	८	प्रमाणीक	प्रामाणिक
७३	१	पुवंक	पूर्व

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७५	९।१०	प्रमाणीक	प्रामाणिक
८४	११	कारणादिक	कारणा आदि
८६	८	कहि	कहीं
९०	१०	मद	मद्य
९०	११	मद	मद्य
९१	८	मद	मद्य
९२	१	भसम	भस्म
९२	२	मास	मांस
९५	१	प्रमाणीक	प्रामाणिक
१ १	५	पछने	पूछने
१ १	७	उप्पाय	उप्पायण
१ १	११	दीप	द्वीप
१११	११	दुमगन्धी	दुर्गन्धी
११६	१२	साधुर्वी	साधुवी
११७	[illegible]	राजार्थी	राजार्थो
११८	५	पाषा	पामर
११८	१२	क्रियार्थी	क्रियार्थो

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३८	४	भर्तादि	भरतादि
१३९	१०	डिंभ	दम्भ
१३९	१०	मदोन मत्तों	मदोन्मत्तों
१४०	१	निचले	चिनले
१४०	७	सावद्याचार्यों	सावद्याचार्यों
१४१	१	प्रमाणीक	प्रामाणिक
१४७	७	पण्णान्त	पण्णंत्ता
१४७	१२	गोपमा	गोयमा
१४७	१४	धम्मं	धम्मं
१४८	१०	ह	है
१५१	१५	बर्षो	वर्षों
१५२	२	हा	हो
१५४	४	परिगृह	परिग्रह
१५४	१४	जैनतत्वदर्श	जैनतत्वादर्श
१५५	१	कुछतो	कुछ
१५५	१०	निर्पक्षी	निष्पक्षी
१५६	१	आमनाय	आम्नाय
१५६	२	ह	है

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३६	११	ध्याता	ध्यात
१३८	६	प्रमाणीक	प्रामाणिक
१३८	१०	प्रमाणीक	प्रामाणिक
१४	५	कारण मत है कि	कारण के वास्ते
१४१	२	विजयकीर्ति तो इसीलिये विक्रमी	विजय की ने विक्रमी
१४१	२	वैराग	वैराग्य
१४२	१२	रहिते थे	रहते थे
१४३	११	पारिख कोद	कोद पारिख
१४३	११	करकपर रम	करन को रम देना
१४३	१२	देखेती	देखे तो
१४४	७	भाय	भार्य्या
१४८	३	सवेज	सवमी
१४८	१२	सुखे	सुखे
१००	१७	उदय	उदय
१०१	१२	पिपे	पिप
१०२	७	मद	मद्य
१०२	७	समयादि	समयवादि

नोट।

लाला गंगाराम मुन्शीराम श्रावक हुश्यार-पुर वासी ने इस पुस्तक के छपवाने में हम कों वहुत सहायता दी, जिसके लिये हम इनका धन्यवाद करते हैं।

भारतभर में सबसे बड़ा संस्कृत भाषा पुस्तकों का सूचीपत्र।

महाराज जी ?

आपकी सेवा में निवेदन किया जाता है कि हमारे प्राचीन संस्कृत पुस्तकालय का सूची पत्र जिसकी कि आपलोग वहुत कालसे देखने की इच्छा करते थे आज ईश्वर की कृपा से ३ वर्ष की मेहनत के वाद वड़े २ प्रसिद्ध पंडितों की सहायता से त्यार होकर मुम्बई से छप कर

आगया है अब के इस में नाम पुस्तक और कर्ता का नाम और टीकाकार का नाम सब कुछ खोलकर प्रत्येक पुस्तक के आगे लिखा हुवा है ग्राहकों को किसी प्रश्न करने की अपेक्षा नहीं होगी सूचीपत्र के १२० पृष्ठ हैं। लागत हमारी प्रत्येक सूचीपत्र पर १) खर्च पडा है केवल अपने ग्राहकों से महसूल मात्र जो मुम्बई से आने में पडा है दाम ।) मात्र रक्खा है ॥

जो महाशय हमारे पुस्तकालय का सूचीपत्र देखना चाहें। दाम और =) महसूल कुल ।=) के टिकट लिफाफे में भेजकर मंगा सकते हैं कृपा करके मंगाते समय अपना पता स्पष्टाक्षरों में लिखना ॥ विज्ञापक

मेहरचन्द्र, लक्ष्मणदास,

संस्कृत पुस्तकालय सैदमिट्ठा बाजार लाहोर ॥